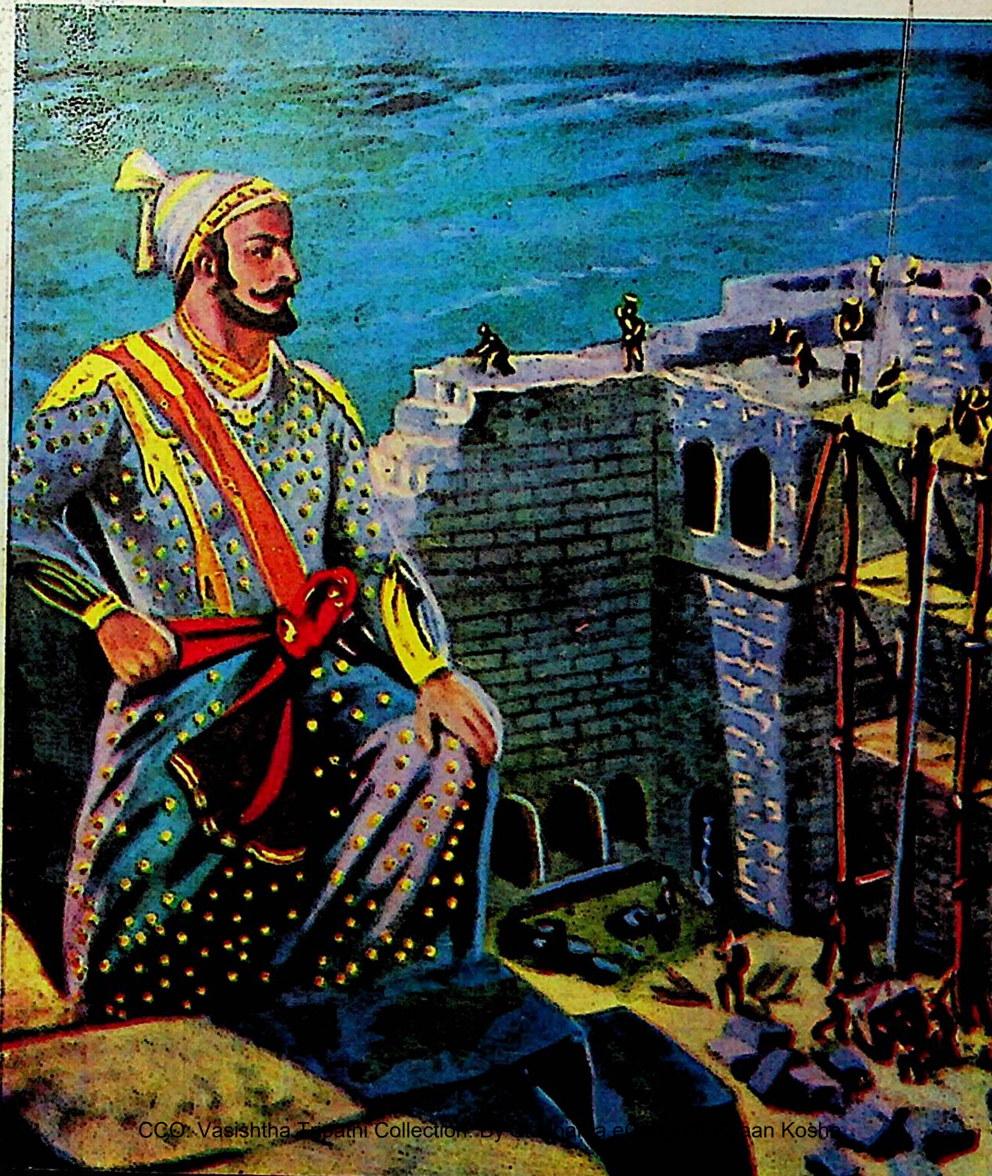
2.5

स्वराज्य-संस्थापक

शिवाजी



स्वराज्य-संस्थापक शिवाजी

स्वराज्य-संस्थापक शिवाजी

(भाग एक)

दि० वि० पातुरकर : आनन्द आदीश

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, नयी दिल्ली-११००५५

प्रकाशक :
सुरुचि प्रकाशन
(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)
केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली–११००५५

संस्करण : विक्रम–संवत् २०५६ (२००२ ई०)

मूल्य : पुस्तकालय संस्करण ४० रूपये

मुद्रक : धालीवाल प्रिंटर्स, पहाड़ गंज, नई दिल्ली–५५

निवेदन

'स्वराज्य-संस्थापक शिवाजी' भाग-१ फरवरी १९७४ में शिवाजी-जयन्ती पर प्रकाशित हुआ था। इसका सर्वत्र स्वागत हुआ। विभिन्न दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों ने अपनी समीक्षा में पुस्तक की साज-सज्जा, रोचक एवं प्रेरक भाषा के साथ-साथ तथ्यात्मक सामग्री और चित्रों की विशेष रूप से प्रशंसा की। पाँच मास की अल्पावधि में ही इसका द्वितीय संस्करण करना पड़ा था। दूसरा संस्करण भी समाप्त हो जाने के बाद यह पुस्तक पर्याप्त समय से बाजार में उपलब्ध नहीं थी। इस बीच इसकी निरन्तर बनी रही माँग को देखते हुए यह तीसरा संस्करण प्रकाशित किया गया है। गत संस्करणों में रह गयीं वर्तनी आदि सम्बन्धी यत्किंचित् छोटी-मोटी त्रुटियाँ न रहने देने का इसमें यथाशक्य प्रयास किया गया है।

सम्पूर्ण देश में हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मलयालम, असमी, बंगला और उर्दू भाषाओं के अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इसकी कथाएँ धारावाहिक छप चुकने के कारण पहले ही पर्याप्त लोकप्रिय हो चुकी हैं।

प्रस्तुत भाग-१ में २६ कथाएँ हैं। भाग-२ में, जो सर्वप्रथम जून १९७४ में प्रकाशित हुआ था, आगे की २६ कथाएँ हैं। इस प्रकार कुल ५२ कथाओं में शिवाजी के समग्र जीवन को क्रमबद्ध करके पुस्तक पूर्ण की गयी है।

प्रत्येक कथा के साथ एक-एक चित्र इस पुस्तक की विशेषता है। ये चित्र 'छत्रपति शिवाजी' फिल्म के निर्माता श्री भालजी पेंढारकर के मार्गदर्शन में प्रसिद्ध चित्रकार कोल्हापुर के श्री रवीन्द्र मिस्त्री ने तैयार किये हैं।

सुविख्यात श्रमिक-नेता एवं मौलिक विचारक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने पुस्तक की भूमिका लिखकर तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपना अभिमत लिखकर हमें कृतार्थ किया है। हम दोनों महानुभावों के अत्यन्त आभारी हैं।

आशा है कि सहृदय पाठक इस पुस्तक का पूर्ववत् उत्साहपूर्वक स्वागत करेंगे।

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

अभिमत

जिन राष्ट्र-उन्नायक वीर पुरुषों के नाम भारतीय इतिहास में जगमगाते रहेंगे, उनमें छत्रपति शिवाजी महाराज का स्थान किसी से पीछे नहीं है। वे निरे राजा ही नहीं बने। उनकी गद्दी घोड़े की पीठ रही अर्थात् उनका स्वधर्म सच्चे क्षत्रिय का था। सत्ता-भोग का जीवन उनके पास नहीं फटका तो इस कारण कि वह उन्हें अभीष्ट ही न था। इसलिये आरम्भ से अन्त तक उनका जीवन संघर्ष और पराक्रम का रहा और अपने लिये कुछ बना बैठने की बात ही उन्हें नहीं सूझ पायी। किन्तु उनके चरित्र से जिस चैतन्य की सृष्टि हुई और जो जन-जीवन में मनस्विता जागी, उसने महाराष्ट्र के तेज को ऐसा चमकाया कि समूचा राष्ट्र लगभग एक शताब्दी तक दीप्तिमान रहा।

कुछ इतिहासज्ञ छत्रपति शिवाजी के जीवन की गरिमा को हल्का तक दिखाने का प्रयास कर गये हैं। उन्होंने उन्हें अपने अभिनिवेशों में से देखा हो सकता है, शिवाजी की अन्तरंगता में से नहीं। उनके जैसे शूरवीर पुरुष को संकीर्ण और साम्प्रदायिक मानना अपनी समझ को तिरस्कृत करना होगा।

पराक्रम कुछ वह भी हो सकता है, जो प्रतिक्रिया-जन्य हो। सामान्य वेतन-भोगी सैनिक और सेनापति की बहादुरी कुछ उस कोटि की हुआ करती है। ऐसी वीरता विलक्षण स्तर तक भी पहुँच सकती है। किन्तु समग्र जीवन जिससे ज्वलन्त और प्रोज्ज्वल हो आता है वह शौर्य प्रतिक्रिया में से नहीं, प्रतिभा में से जन्म पाता है। वह व्यक्ति को मानो साधक बना देता है। उसकी निगाह में अत्याचार से पीड़ित जनता की वेदना होती है, अत्याचारी के प्रति द्वेष की प्रेरणा नहीं। शिवाजी का शौर्य इसी कोटि का था।

प्रस्तुत संकलन उन्हीं शिवाजी के जीवन-चरित्र को स्फुट कथा-चित्रों में मूर्त करता है।

लेखकों को मैं बधाई दे सकता हूँ कि उन्होंने एक द्युतिमान पुरुष को सफलता-पूर्वक हमारे निकट सजीव और प्रत्यक्ष कर दिया है। पुस्तक विशेषकर उठती वय वालों के लिये बहुत प्रेरणाप्रद सिद्ध होगी।

१०-२-७४ —जैनेन्द्र कुमार

भूमिका

१९ फरवरी, सन् १६३०

काल की कोख से फूटी एक ज्योति-शलाका का जन्म-दिवस। वह भाग्यशाली दिवस जिसने इतिहास के एक अद्वितीय व्यक्तित्व शिवाजी को इस धर्म-भूमि में अवतीर्ण किया। शून्य से सृष्टि का निर्माण करने वाले कर्तृत्व के सूत्रपात का पावन दिवस।

संसार के गुण-सम्पन्न अनेकानेक महापुरुषों की शिवाजी से तुलना हो सकती है। सेना-संचालन की दृष्टि से सिकन्दर, सीजर, हानिबाल और नेपोलियन की। दारुण निराशा की घड़ियों में जनता का मनोधैर्य टिकाये रखने की क्षमता की दृष्टि से लिंकन और चर्चिल की। प्रखर राष्ट्रभाव को जाग्रत और संगठित करने में मेजिनी, वाशिंगटन तथा बिस्मार्क की। राष्ट्रनिर्माण-कार्य में आत्म-विसर्जन की दृष्टि से कमालपाशा और लेनिन की। आसक्तिरहित शासन करने में मार्कस ऑरेलियस तथा चार्ल्स पंचम की।

किन्तु सम्पूर्ण गुण-समुच्चय की दृष्टि से शिवाजी की तुलना किससे करें? कल्याण के सूबेदार की लावण्यमयी पुत्रवधू को मातृवत् सम्मानित करने वाले छत्रपति के चरित्र की तुलना हम अन्य किस सत्ताधीश से करें?

माओ और चे ग्वेवेरा से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व शिवाजी ने गुरिल्ला युद्ध-तंत्र का निर्माण किया। नेपोलियन और हिटलर के मास्को-अभियान के अनुभवों के सैकड़ों वर्ष पहले, युद्ध के दौरान सम्भाव्य आपत्काल में आश्रय-स्थान के नाते सुदूर दक्षिण में उपयुक्त प्रदेश सम्पादित करने की दूरदर्शिता उन्होंने दिखायी। शास्त्र के नाते 'जिओपोलिटिक्स' का विकास होने के २५० वर्ष पूर्व सागरी सत्ता का सूत्रपात उन्होंने प्रयासपूर्वक किया। इतिहास के जिस कालखण्ड में 'सेक्यूलर' राज्य की कल्पना पश्चिम में लोकप्रिय नहीं थी, उस समय शिवाजी ने हिन्दू परम्परा के अनुकूल सम्प्रदायनिरपेक्ष धर्मराज्य की स्थापना की।

और उस पर अपने कर्तृत्व से सम्पादित राज्य के प्रति पूर्ण अनासक्ति! अध्यात्म-प्रवण होने के कारण अर्जित राज्य छोड़कर सन्त तुकाराम के समक्ष हरि-संकीर्तन में ही शेष जीवन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट की। एक अन्य अवसर पर तो उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य ही समर्थ गुरु रामदास स्वामी के चरणों में समर्पित कर दिया।

६ जून, १६७४ के दिन सम्पन्न हुआ शिवाजी का राज्यारोहण किसी व्यक्ति का नहीं माना गया। हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना तो घोषणा थी हिन्दू राष्ट्र के सफल प्रत्याक्रमण की, हिन्दू संस्कृति के पुनरुत्थान की और विश्वधर्म की पुनः प्रतिष्ठापना की।

सनातन काल से हिन्दू राष्ट्र ने जिस आदर्श का संगोपन किया, वही आदर्श मानव रूप धरकर सिंहासनारूढ़ हो रहा है, यही भावना जनमानस में थी उस समय। स्वयं शिवाजी ने भी समय-समय पर इसी धारणा का उद्‌घोष किया—

"हिन्दवी स्वराज्य-स्थापन होना चाहिए, यह श्री भगवती की इच्छा है"

"राज्य धर्म का है, शिवबा का नहीं"

अतएव यह राज्यारोहण धर्म का ही माना गया।

इस अतुलनीय राष्ट्र-पुरुष का स्मरण हमारे राष्ट्र के लिये संजीवनी के समान है और उनके राज्यारोहण की त्रिसंवत्सरी का वर्ष इस कार्य के लिये उचित भी। इस अवसर पर विभिन्न कथाओं के माध्यम से उनके जीवन के सभी पहलुओं को योग्य रूप में प्रस्तुत कर श्री दि० वि० पातुरकर और श्री आनन्द आदीश ने राष्ट्र की एक महान सेवा की है, जिसके लिये मैं उनका हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

शिवाजी का जीवन रोमहर्षक, उद्‌बोधक तथा प्रेरणास्पद घटनाओं का अनन्त भण्डार है। निश्चय ही उनमें से ५२ घटनाओं का समुचित चयन करना अति कठिन कार्य था। किन्तु हमारे लेखक-द्वय ने इस दायित्व का निर्वाह बहुत ही सफलतापूर्वक किया है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक आज की अन्धकारमय घोर निराशा की घड़ी में राष्ट्र के युवकों का उत्साह बढ़ाकर आपत्तियों पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करेगी।

—दत्तोपंत ठेंगड़ी

१

शूरवीर शाह जी

शाहजी अपने नन्हे पुत्र शम्भा जी को खिला रहे थे। उसकी बाल-सुलभ तुतलाहटभरी बातों को सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहे थे। शम्भा जी कभी अपने दोनों हाथ कानों पर रखकर भालू की तरह गुर्राता, तो कभी घुटनों के बल हाथी की चाल चलता। कभी शाहजी की पीठ पर आकर 'तिक-तिक' कर घुड़सवारी का मजा लेता और कभी किलकारी मार कर हँस पड़ता।

तभी सन्देशवाहक ने आकर निजाम का सन्देश दिया।

जीजाबाई ने पूछा—"क्या कोई विशेष सन्देश है?"

"यह तो दरबार में पहुँचकर ही पता चलेगा। पत्र में तो केवल यही लिखा है कि हमें निजाम के दरबार में तुरन्त पहुँचना है", शाहजी ने पत्र पर दृष्टि डालते हुए उत्तर दिया।

कुछ ही क्षणों में शाहजी तैयार हुए और घोड़े पर सवार हो एड़ लगाने लगे। उन्हीं के साथ उनके छोटे भाई शरीफ जी भी निजाम के दरबार में जा रहे थे।

दरबार में प्रवेश करते ही उन्होंने चारों तरफ देखा। केवल मुट्ठीभर बड़े दरबारी ही वहाँ उपस्थित थे और सिंहासन पर सुलतान चिन्ता-निमग्न बैठा था।

वजीर मलिक अम्बर ने शाहजी को बुलाने का कारण बताते हुए कहा—"शाहजी! हम बड़ी गम्भीर परिस्थिति में आ फँसे हैं। दिल्ली के बादशाह और आदिलशाह दोनों हमारे विरुद्ध एक हो गये हैं। शीघ्र ही वे हम पर आक्रमण करने वाले हैं।"

शाहजी ध्यान से मलिक अम्बर की बात सुनते जा रहे थे।

मलिक अम्बर ने पुन: कहना प्रारम्भ किया—"इतना ही नहीं, आपके श्वसुर लखुजी जाधव भी हमसे क्रोधित हो हमारा साथ छोड़कर मुगलों से जा मिले हैं।"

शाहजी विचारों में डूब गये। सारे दरबार में शान्ति छायी थी। शाहजी को अभी भी वह दिन अच्छी प्रकार स्मरण था जब सरदार खण्डागले का हाथी बिगड़ने के कारण बातों ही बातों में भोंसले और जाधव परिवारों में कहासुनी हो

नहीं हुई, तलवारें तक खिंच गयीं। लखुजी का पुत्र दत्ताजी और शाहजी का छोटा भाई शम्भाजी अपनी जान से हाथ धो बैठे थे। स्वयं शाहजी को लखुजी ने क्रोधित हो तलवार के वार से घायल कर बेहोश कर डाला था।

शाहजी सोच रहे थे—अब एक बार फिर श्वसुर से दो-दो हाथ करने पड़ेंगे। लखजी होंगे मुगलों की तरफ और वे स्वयं निजाम की ओर।

मलिक अम्बर उनके भावों को भाँप रहा था। उचित अवसर समझ कर विनम्र होकर बोला—"ऐसी विपत्ति के समय शाहजी! हमें आपका बड़ा भरोसा है।"

शाहजी ने म्यान से एक ही झटके में तलवार बाहर निकाली और अंगुली से उसकी धार की तेजी नापने लगे। फिर गम्भीर होकर बोले—"सुलतान किसी बात की चिन्ता न करें। आपकी रक्षा के लिये हम कोई कसर बाकी न छोड़ेंगे।"

निजाम का चेहरा खिल उठा—"शाहजी को सम्मानसूचक वस्त्र प्रदान किये जायें।"

निजाम ने अपने हाथ से शाहजी को पगड़ी पहनायी और दरबार में उपस्थित सभी ने तालियाँ बजाकर उनका अभिनन्दन किया।

बिना समय बरबाद किये शाहजी ने युद्ध की तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १६२४ में अहमदनगर के निकट भातवड़ी के स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं की मुठभेड़ हुई। युद्ध के नारों से आकाश गूंज उठा और देखते ही देखते खून की नदियाँ बहने लगीं। शाहजी और शरीफ जी दोनों की तलवारें बिजली की तरह चमक रही थीं। जिधर को भी ये निकल जाते, दुश्मनों की सेनाओं में दरार पड़ती चली जाती। मुगल सेना हताश हो उठी।

मुगल जान बचाने को भागे और आदिलशाही सेना भी भागने ही वाली थी कि शरीफ जी के सीने में एक तीर आकर लगा और उनका मृत शरीर घोड़े की पीठ से फिसलकर नीचे आ गिरा।

शाहजी को बड़ा भारी धक्का लगा। दुखी हृदय वे बन्दी दुश्मन सरदारों को लेकर निजाम के दरबार में हाजिर हुए तो सारा दरबार उनके स्वागत के लिये खड़ा हो गया।

शाहजी अपने महल में लौटकर आये तो जीजाबाई ने दुखी स्वर में कहा—"विदेशी शासकों के राज्य-संरक्षण के लिये भोंसले अपना खून बहाना बन्द कर स्वराज्य-स्थापना के लिये प्रयत्न क्यों नहीं शुरू कर सकते?"

शाहजी जीजाबाई की तरफ देखते के देखते रह गये। वास्तव में जीजाबाई स्वयं शाहजी के अन्तर्मन के भावों को ही प्रतिध्वनित कर रही थीं।

भातवड़ी की विजय की एक अन्य प्रतिक्रिया स्वयं निजाम के दरबार में भी हुई। मन ही मन सुलतान से लेकर मलिक अम्बर तक शाहजी से आशंकित हो



शाहजी भोंसले ने केरल प्रदेश तक धावे बोले

उठे। उन्होंने शाहजी को एक भावी समस्या मानना प्रारम्भ कर दिया। निराश हो शाहजी निजाम का दरबार छोड़ अपनी ही रियासत की देखभाल करने लगे।

बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह को ज्यों ही यह समाचार मिला तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके लिये यह एक सुनहरा अवसर था। उसने शाहजी को अपने दरबार में आमंत्रित किया और 'सर लश्कर' की उपाधि से विभूषित करने की पेशकश की।

अब शाहजी की तलवार बीजापुर के लिये चमकने लगी। एक के बाद एक क्षेत्र उन्होंने बीजापुर के लिये विजित किये। स्वयं मलिक अम्बर को युद्ध में करारी मात दी। केरल प्रदेश तक उन्होंने धावे बोले।

इसी बीच इब्राहीम आदिलशाह मर गया तो परिस्थिति बदलने लगी। मलिक अम्बर ने कुछ खोया प्रदेश फिर हथिया लिया। परन्तु वह भी जल्दी ही चल बसा। उसका पुत्र फतेहखाँ निकम्मा साबित हुआ। निजामशाही ने शाहजी को पुनः पूरे सम्मान के साथ अपने दरबार में आमंत्रित किया। स्वयं लखुजी जाधव भी फिर से निजामशाही में आ मिले।

सुलतानों की इन न समाप्त होने वाली लड़ाइयों में जनता पिस रही थी। आततायी शासकों को जनता की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। भुखमरी और अत्याचार साधारण जन के भाग्य में जीवनभर के लिये लिखे गये लगते थे। मन्दिर ध्वस्त किये जा रहे थे और महिलाओं की इज्जत लूटी जा रही थी।

जीजाबाई अपने चारों ओर हो रहे इस अत्याचार के समाचारों को सुनती और शाहजी से पूछती—"यह विनाशलीला कब समाप्त होगी ?"

"जल्दी ही", शाहजी विश्वासपूर्वक उत्तर देते—"हम तो पूरा प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु अन्य लोग साथ नहीं देते। स्वयं हमारे ही बन्धु-बान्धव डरते हैं और हमारा विरोध करने खड़े हो जाते हैं। एक अजीब सी लाचारी है।"

सारे दक्षिण भारत में शाहजी की वीरता की धाक थी। स्वयं दिल्ली का बादशाह शाहजहाँ तक इस बात को जानता था।

किन्तु दुनिया को अभी यह पता नहीं चला था कि इसी शाहजी के घर में स्वातन्त्र्य-सूर्य उगने को लालायित है।

२

स्वातन्त्र्य की राह पर

इन शाहजी और जीजाबाई के विवाह की कथा भी बड़ी रोचक और विचित्र है।

कृष्ण के वंशज जाधववंशी समय के फेर से अहमदनगर के निजामशाह की नौकरी बजा रहे थे। इधर-उधर कुछ गांवों की जागीरदारी ही उनका बचा-खुचा गौरव था और कृषि मुख्य धन्धा। अब सिंदखेड़ जाधवों का गढ़ था और लखुजी जाधव उसके सरदार। उन्हीं के अन्तर्गत मालोजी भोंसले नामक सूर्यवंशी सरदार वेरुल में निवास करते थे।

रंगपंचमी का दिन था। बड़े-छोटे सभी रंगोत्सव का आनन्द ले रहे थे। उसी समय मालोजी भी अपने पुत्र के साथ उत्सव में भाग लेने पहुँचे।

आदर-सत्कार के बाद दोनों में बातचीत शुरू हो गयी और फिर रंगोत्सव भी। बड़े ही क्यों, दोनों बच्चे भी रंग खेलने लगे। लखुजी की नजर उधर पड़ी तो बोले—"मालोजी! हम-तुम क्या रंगोत्सव मनायेंगे, जो ये बच्चे मनाते हैं। जरा इधर तो देखो जीजाबाई ने तुम्हारे शाहजी को क्या सिर से पैर तक रंग डाला है।"

"आप ठीक कहते हैं। बचपन की मस्ती ही ऐसी होती है। हम तो अब वह अवस्था पार कर चुके हैं न!" मालोजी ने उत्तर दिया।

"वह तो है ही। अच्छा यह बताओ, यह जोड़ी कैसी लगती है?"

"बड़ी सुन्दर, जाधवजी!"

"सच दोनों बड़े सुन्दर लग रहे हैं। क्या ही सुन्दर जोड़ी है।" लखुजी के मुंह से निकला।

मालोजी मन ही मन प्रसन्न तो थे ही। एकदम बोले—"यह तो मेरा सौभाग्य है, महाराज! भला ऐसी रूपवती कन्या को पुत्रवधू के रूप में कौन नहीं चाहेगा।"

एक क्षण के लिये लखुजी मौन रह गये क्योंकि आखिर तो मालोजी भोंसले उनके अन्तर्गत थे। परन्तु फिर तुरन्त कहा—"मालोजी! हमारा भी सौभाग्य है कि शाहजी जैसा योग्य वर हमारी कन्या को मिलेगा। शाहजी के शूरवीर होने के

लक्षण हमें प्रिय हैं।"

और फिर रंगोत्सव बड़ी धूमधाम से चला। कुछ ही दिन बाद सम्पन्न हुए विवाहोत्सव की धूमधाम के तो कहने ही क्या!

जीजाबाई का कद थोड़ा छोटा, परन्तु रूप और गुण बहुत बड़े थे। देवगिरि के यादववंश की कन्या! भगवान कृष्ण के स्वाभिमानी कुल की कन्या!!

इसी प्रकार राम के वंशज सूर्यवंशी शाहजी। बड़े वीर और पराक्रमी। राज-कार्य में अत्यन्त नीतिनिपुण। १६२४ ई० के भातवड़ी युद्ध में मलिक अम्बर की आज्ञा से मुगल सेना के परखंचे उड़ा देने वाले शाहजी। उनके शौर्य का लोहा निजामशाही, आदिलशाही, कुतुबशाही ही नहीं, मुगलशाही भी मानती थी।

समय बीतता चला गया और इनका दाम्पत्य-जीवन भी समय के अनुसार ही कभी सुख में तो कभी दुःख में बीतने लगा। राजकार्य में लगे लोगों का जो अस्थिर जीवन रहता है, वही अस्थिरता इनके भी जीवन में थी। कभी जय, तो कभी पराजय। कभी इससे मेल तो उससे वैर और फिर उससे मेल तो इससे वैर। अनेक बार तो खाने-पीने, सोने-बैठने तक का समय नहीं मिलता था। परन्तु पति-परायणा स्वाभिमानिनी जीजाबाई ने सब कुछ हँसते-हँसते झेला। और उन्हें क्या-क्या कष्ट नहीं झेलना पड़ा!

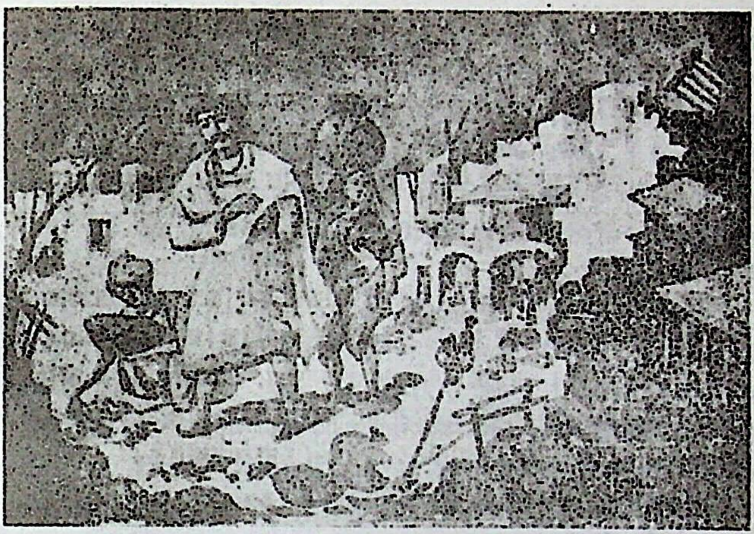
एक दिन जीजाबाई महल में बैठी थीं तो ऐसी भयानक सूचना मिली कि दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा। सहन करने की सीमा से परे। खबर मिली थी—२५ जुलाई, १६२९ के दिन लखुजी और उनके दो पुत्रों की निजाम के भरे दरबार में हत्या कर दी गयी।

लखुजी जाधव अपने दोनों पुत्रों अचलोजी और रघुजी के साथ रक्षाबन्धन के दिन निजामशाह के दरबार में गये थे। सुलतान जला-भुना बैठा था। उनका अभिवादन स्वीकार किये बिना ही उठकर जनानखाने की ओर चला गया। और पूर्व-निर्धारित षड्यंत्र के अनुसार मुकबरखान, सफदरखान तथा हमीदखान ने अचानक पीछे से वार कर इन सभी की हत्या कर दी।

ऐसा नीचतापूर्ण धोखा! इतना कमीना षड्यंत्र!! अकल्पनीय वज्रपात।

जीजाबाई का गला भर आया। आँखों में आँसू छलक आये। रुँधे कण्ठ से उन्होंने शाहजी से कहा—"क्या आप अब भी इन क्रूर अत्याचारियों की नौकरी बजाते रहेंगे? मेरा आप पर कोई अधिकार नहीं है? इस जघन्य अपराध का बदला लेने के लिये मैं आपसे नहीं तो किससे कहूँ? अपनी व्यथा किससे जाकर रोऊँ?"

"जीजाबाई! धैर्य धारण करो," शाहजी ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया—"आपकी वेदना को हम भली प्रकार समझते हैं, परन्तु करें क्या? चारों तरफ यही निजामशाही, कुतुबशाही, आदिलशाही या मुगलशाही। कहाँ जायें, क्या



पूना शहर अब शहर नहीं, एक शापित उजाड़ बस्ती लगने लगा

करें ? मन तो हमारा भी बड़ा विद्रोह करता है, लेकिन···"

"लेकिन अपने पर विश्वास नहीं होता," जीजाबाई ने क्रोधित हो शाहजी का वाक्य पूरा किया। पुनः उनकी ओर अश्रुपूरित नेत्रों से देखकर बोली, "आज जाधव कुल मिटाया गया है तो कल भोंसले वंश की बारी आयेगी। ये अत्याचारी एक-एक कर सबको मौत के घाट उतारेंगे और इस देश की महिलाओं की माँग का सिन्दूर चिताओं को समर्पित होता रहेगा। सती हो गयी मेरी भाभियों की सौगन्ध, मैं चाहती हूँ मेरी कोख का कोई लाल इन सबका बदला ले, शताब्दियों के इन कलंकों को धो डाले।"

एक क्षण रुककर जीजाबाई ने फिर शाहजी से कहा—"मैं अपने शूरवीर पति से कुछ अपेक्षा करती हूँ। कम से कम आप इन दुष्टों की नौकरी तो न बजायें।"

"जीजाबाई ! हमने अभी से निश्चय किया। इतना ही नहीं, हम अब स्वतंत्र रहेंगे। कुछ भी परिणाम क्यों न हो, गुलामी का जीवन व्यतीत नहीं करेंगे।" शाहजी ने उत्तर दिया।

और शाहजी ने एक बार तो अपना यह निर्णय कार्यरूप में परिणत कर ही दिखाया। परिणाम चाहे कुछ भी हुआ हो।

उन्होंने निजामशाही छोड़कर विद्रोह का शंख फूंक दिया।

आसपास के सरदारों को सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया। और शाह जी स्वयं परिंडा से संगमनेर और वहाँ से पूना पहुँचे। पूना की जागीर मालोजी

राजे से भोंसला घराने को प्राप्त हुई थी, पूना में भोंसला परिवार के विशाल भवन थे, सम्पत्ति थी। विद्रोह के लिये पूना को ही केन्द्र बनाया गया। आसपास का सारा प्रदेश शाहजी राजे ने अपने अधिकार में कर लिया। पूना स्वतंत्र हुआ। तीन सौ वर्ष के पश्चात् लोगों ने फिर से स्वतंत्रता की सुनहरी प्रभात देखी। स्वतंत्रता-समीर के सुखद स्पर्श से जन-जन आल्हादित हो उठा। "हम स्वतंत्र हैं," कहते हुए लोग सरिताओं का जल-प्राशन करने लगे। वायुमण्डल एक अजीब मस्ती से भर गया।

परन्तु स्थिति अभी अस्थिर ही थी। किसी भी क्षण प्रति-आक्रमण की सम्भावना थी। शाहजी राजे को जीजाबाई की अत्यधिक चिन्ता थी, क्योंकि इस समय वे गर्भवती थीं। शाहजी ने जीजाबाई से कहा, "हम पर किसी भी समय संकट आ सकता है। इस नाजुक समय में आपके लिए भागदौड़ सम्भव नहीं होगी। इसलिये आप किसी सुरक्षित स्थान पर रहें, ऐसी हमारी इच्छा है।"

जीजाबाई ने कहा, "मैं शिवनेरी पर रहूँगी।"

शाहजी राजे को यह प्रस्ताव पसन्द आया।

सुरक्षा की दृष्टि से शिवनेरी दुर्ग सर्वश्रेष्ठ था। शिवनेरी का किलेदार भी शाहजी राजे का रिश्तेदार ही था। दुर्ग पर शिवाई देवी का कृपाछत्र था। जीजाबाई की व्यवस्था शिवनेरी दुर्ग पर करके शाहजी मोर्चे पर चल दिये।

शाहजी के विद्रोह के समाचार से वीजापुर का सुलतान अत्यन्त क्रोधित हुआ। एक मराठा सरदार स्वतंत्र होने की हिम्मत करे ? शाहजी का विद्रोह कुचलने के लिये वजीर खवास खान और मराठा सरदार रायराव को विशाल सेना के साथ भेजा गया। सेना ने पूना पहुँचकर पिशाचलीला प्रारम्भ कर दी। शाहजी राजे के भव्य भवन धूं-धूं कर जलने लगे। सम्पूर्ण पूना आग के हवाले कर दिया गया। जो लोग प्राणरक्षा के लिये भागे, उन्हें तलवार से काट डाला गया अथवा आग की भेंट चढ़ा दिया गया। पूना राख हो गया। मरघट बना दिया गया। इतना करके भी आदिलशाही सेना को सन्तोष नहीं हुआ। शाहजी राजे ने जनता के मन में जो स्वतंत्रता की महत्त्वाकांक्षा का अंकुर लगाया था, उसे समूल नष्ट करने का उनका विचार था। फिर से कोई विद्रोह करने का साहस न कर सके, ऐसी व्यवस्था उन्हें करनी थी। उन्हें जनता को अनुभव कराना था कि 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण करोगे तो खबरदार ! मिट्टी में मिला दिये जाओगे। इसीलिए रायराव ने पूना नगर पर गधों से जुता हुआ हल चलवाया। जमीन में एक बल्ली गाड़कर उस पर फटी जूती और फूटी कौड़ी टाँगी गयी।

पूना शहर अब शहर नहीं एक शापित उजाड़ वस्ती लगने लगा।

अब शाहजी और जीजाबाई की आशाओं का एकमात्र केन्द्र केवल आने वाला शिशु ही था।

३

अरुणोदय

शाहजी के स्वराज्य स्थापना के सब प्रयत्न असफल हो गये थे। बीजापुर से विद्रोह करना सार्थक नहीं हुआ। निजामशाही से वैर लेना बेकार गया। अब क्या करें ? कहाँ जायें ?

मुगलों का सहारा लेने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं बचा था। ऐसा न किया गया तो बीजापुर वाले जिन्दा न रहने देंगे। सब बातों का विचार कर शाहजी ने मुगल सरदार आजमखाँ को पत्र लिखा और मुगल बादशाह ने उन्हें अपना पंच-हजारी मनसबदार बनाना स्वीकार कर लिया।

पूना उजाड़ हो गया। खवासखाँ ने अपनी पाशविकता का खुलकर प्रदर्शन किया था। इसी कारण शाहजी को सपरिवार शिवनेरी दुर्ग जाना पड़ा। यह स्थान अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित था।

कहने को सब ठीक-ठाक चल रहा था परन्तु लोगों में बड़ी बेचैनी थी। सन्त-महात्माओं को अपमानित किया जा रहा था। मन्दिरों को तोड़-तोड़कर मस्जिदों का निर्माण किया गया था। महिलाओं की इज्जत लूटी जाती थी। एक प्रकार से जनता नारकीय जीवन जी रही थी। हिन्दू मानबिन्दुओं पर एक-एक कर प्रहार हो रहे थे। लोग त्राहि-त्राहि कर उठे। मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना करने लगे कि किसी युग-प्रवर्त्तक को अवतरित करे जो उन्हें अपमान और निराशा के जीवन से उबारे।

उसी समय दरियाखान ने शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तो उसे दबाने के लिये शाहजी को आदेश दिया गया। शाहजी को आज्ञा मानकर शिवनेरी दुर्ग से जाना पड़ा।

वहाँ से प्रस्थान करने से पूर्व शाहजी ने जीजाबाई से विदा माँगते हुए कहा— "हमें राजाज्ञा मानकर जाना पड़ रहा है। विधाता का विधान ही ऐसा है। हमारे सब प्रयत्न असफल रहे हैं। मुगलों की चाकरी के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। हम जा रहे हैं, तो आपसे एक बात कहनी है।"

"कहिये," जीजाबाई ने उत्तर दिया, "आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य होगी।"

"शायद ईश्वर की यह इच्छा हो कि जो कार्य हम नहीं कर पाये, वह कार्य आने वाला शिशु बड़ा होकर सम्पन्न करे। पता नहीं हमें कितना समय उधर लग जाये। शिशु-जन्म के समय भी हम शायद ही यहाँ हों। आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें और हमारी तनिक भी चिन्ता न करें। कहते हैं बच्चे पर जन्मपूर्व के संस्कार वड़ा प्रभाव डालते हैं। क्या हम आशा करें कि आप हमारी अमानत की बेहबूदी को ध्यान में रखकर अपने को चिन्ताओं और आशंकाओं से मुक्त रखेंगी?"

जीजाबाई के मुँह पर क्षण भर के लिये लज्जा की लाली दौड़ गयी। फिर वे गम्भीर होकर बोलीं, "मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहें। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। इन सारी विपरीत परिस्थितियों में भी मैं तो रात-दिन ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ कि मुझे ऐसा पुत्ररत्न दे जो भारत-जननी के कष्टों को धो डाले, इसकी बेड़ियों को कच्ची कलियों की तरह चटकाकर तोड़ दे। वस क्या कहूँ मैं क्या-क्या मनौति माँग रही हूँ।"

शाहजी चले गये।

अपने कष्टों का वर्णन करने लोगों के झुण्ड के झुण्ड शिवनेरी दुर्ग आते रहते थे। जीजाबाई उनकी बातें मनोयोग से सुनतीं और ढांढस बँधाकर वापिस भेज देतीं।

आखिर शुभ घड़ी आने में कुछ ही दिन रह गये तो प्रसूतिगृह की व्यवस्था की गयी। दक्ष महिलाएँ जीजाबाई की देखभाल के लिये नियुक्त कर दी गयीं। प्रतिदिन सुबह-शाम जीजाबाई शिवनेरी दुर्ग पर बने शिवाई देवी के मन्दिर जातीं और पलकें बन्द कर ऐसे पुत्र-रत्न की माँग करतीं जो दुष्ट-संहारक और धर्म-प्रतिपालक हो।

शिशिर ऋतु, फाल्गुन कृष्ण तृतीया, शालिवाहन शके १५५१ (फरवरी १९, सन् १६३० ई०) उत्तरायण की शुभ लग्न में उनकी कोख से जो पुत्र जन्मा, वही भारत का भावी भाग्यविधाता था। पुत्र जन्म के साथ ही सारा दुर्ग हर्षोन्मत्त हो उठा। ऐसा लगा प्राची में सौ-सौ सूर्य फूट पड़े हों। बच्चे के नक्षत्र बड़े प्रबल थे और सभी लक्षण उसके होनहार होने का डंका पीटते नजर आते थे। उसके पाँच ग्रह अनुकूल और उच्च स्थान पर थे। प्रथमोच्चार में ही लगता था शिशु कह रहा हो, "सोऽऽहम्, कोऽऽहम्।"

जन-जन आनन्दित हो खुशियाँ मना रहा था। मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं और मंगलगान गाये जा रहे थे। नामकरण का दिन आया तो बालक को सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनाये गये। रत्नजटित गहने पहनाने के बाद माता जीजाबाई ने धीमे से उसके कान के पास अपना मुँह लाकर पुकारा "शिवबा"। शिवनेरी देवी



प्रतिदिन प्रभात वेला में जीजाबाई शिवा को गोदी में लेकर दुर्ग की प्राचीर पर टहलने निकलतीं

की आराधना के फलस्वरूप यह पुत्ररत्न जीजाबाई को प्राप्त हुआ था। अतः उन्होंने उसका नाम शिवाजी ही रखा।

शाहजी को सूचना तो पहले ही भेज दी गयी थी। अब उनका पत्र आया जिसमें बालक को आशीर्वाद भेजा था और ईश्वर से कामना की गयी थी कि वह अपने जीवन में ऐसे महान् कार्य करे जिससे दुखी जनता को परित्राण मिले। वह भरत, राम, कृष्ण और चन्द्रगुप्त मौर्य की परम्परा में हो। भारत की कीर्ति को चार चाँद लगाये और अपने वंश का नाम रोशन करे।

वैसे तो ज्योतिषियों ने उनके पत्र से पूर्व ही भविष्यवाणी की थी—बालक अत्यन्त पराक्रमी योद्धा होगा। शत्रु सदैव उसके सामने नीचा देखेगा और कोई उससे आँख भी मिलाने की हिम्मत न कर सकेगा। पृथ्वी, पर्वत और सागर उसकी सत्ता मानेंगे। उसका नाम सुनते ही पापी और दुष्ट दहल जायेंगे जबकि साधु और सज्जन पुरुष कमल की तरह खिल उठेंगे।

माता जीजाबाई उसे देख-देखकर बलिहारी जातीं। जब-जब नन्हें-नन्हें पाँवों में पैंजनियों के घुँघरू बज उठते, जीजाबाई की हृदयतंत्री खनखना जाती। वे अनुभव करतीं उनकी गोद में दिनमणि आ गया है जो अपनी आभा से दसों दिशाओं को आलोकित कर देगा।

प्रतिदिन प्रभातवेला में वे शिवा को गोदी में लेकर दुर्ग की प्राचीर पर टहलने

निकलतीं। साथ में एक दासी रहती। दुर्ग के एक किनारे पर पहुँचकर वे अक्सर रुक जातीं और शैल शिखरों से परे क्षितिज की ओर टकटकी बाँधकर देखा करतीं। शायद विदेशी और विधर्मी अत्याचारी शासकों को मूक चेतावनी दिया करती थीं—तुम्हारे पापों का घड़ा अब भरने वाला है। पापियो! तुम्हारा संहारक मेरी गोद में पल रहा है। उसके हाथों तुम्हें पूरा-पूरा न्याय मिलेगा। वह तुम सबसे एक-एक कर हिसाब लेगा। तुम्हारी करतूतों का पर्दाफाश करेगा।

याद रखना दुष्टो! जिन हाथों से तुमने असंख्य मूर्तियाँ खण्डित की हैं, यह शिवाजी उन हाथों को तलवार से कलम करेगा। जिन आँखों ने माँ-बेटियों को बुरी नजर से देखा है, उन आँखों को नुचवाकर चीलों और गिद्धों को डलवायेगा।

खबरदार रहना कम्बख्तो! खबरदार रहना!!

इसी तरह खड़े-खड़े जब बहुत देर हो जाती तो दासी उनकी तन्द्रा भंग करती। जीजाबाई देखती सारा वातावरण सूर्य रश्मियों से भर गया है। धीरे-धीरे वे वहाँ से दुर्ग के मुख्य भाग की तरफ लौट आतीं।

४
कंचन हल

दरियाखाँ का मान-मर्दन करने के पश्चात् शाहजी पुनः शिवनेरी दुर्ग पधारे। उनकी दृष्टि शिवाजी पर पड़ी जो अब सुन्दर स्वस्थ शिशु के रूप में विकसित हो गया था। शाहजी की आँखों में प्रसन्नता छलक आयी और वैसा ही आह्लाद लौट आया दुर्ग में।

सौम्य प्रसन्नता से आप्लावित कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि समाचार आया—सम्राट् शाहजहाँ बुरहानपुर तक पहुँच गया है।

एक स्नेह भरा चुम्बन, और शिवाजी को जीजाबाई के सुपुर्द कर दिया गया। शाहजी ने कहा—एक और अभियान। हमें जाना ही होगा।

अब जीजाबाई का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था शिवाजी का लालन-पालन। अपने पुत्र को श्रेष्ठतम पुरुष के रूप में विकसित करने के लिये वे दृढ़प्रतिज्ञ थीं।

माँ के मुंह से रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनकर शिवाजी आत्म-विभोर हो उठते थे। उनके मस्तिष्क पर भी इनकी अमिट छाप अंकित हो रही थी।

आक्रमण और प्रति-आक्रमण की शृंखलाओं ने दक्षिण भारत की राजनीति को एक भूलभुलैयाँ बना दिया था। यद्यपि मुर्तजा निजामशाह ने स्वयं मलिक अम्बर के पुत्र फतेहखाँ को अपना मंत्री नियुक्त किया था, फिर भी पद प्राप्त करते ही फतेहखाँ उसी पर झपटा। कुछ समय तक जेल में बन्द रखने के बाद उसने मुर्तजा की हत्या कर दी और हुसैन शाह को निजाम की गद्दी पर बिठा दिया।

परन्तु सम्राट् शाहजहाँ तो निजामशाही को समाप्त करने पर तुला हुआ था। और हाँ, बीजापुर का मुहम्मद आदिलशाह इस कार्य में सहयोग देने के लिये पहले से ही आतुर बैठा था।

शाहजहाँ ने फतेहखाँ का समर्थन प्राप्त करने के लिये शाहजी की जागीर उसे देने का प्रस्ताव किया। एक जाल फेंका।

शाहजी गुस्से से उबल पड़े—"क्या कहा ! मैं ही मुगल दरबार की बजाऊँ

और मेरी ही जागीर किसी अन्य व्यक्ति को भेंट चढ़ा दी जाय। बाज आये ऐसे मालिकों की सेवा करने से।"

मुगलों का साथ छोड़कर निजामशाही के साम्राज्य को बचाने का निश्चय ठानने के बाद शाहजी बीजापुर दरबार के वरिष्ठ राजनेता और अपने घनिष्ठ मित्र मुरार जगदेव द्वारा आदिलशाह को यह चेतावनी भी भेजी—"आप मुगलों का पक्ष लेते समय यह न भूलिए कि निजामशाही राज्य के विनाश के बाद मुगलों की नजरों में अगली बारी आपकी ही होगी।"

आदिलशाह की आँखें खुल गयीं और निजामशाही को बचाने के लिये उसने शाहजी का समर्थन करने का वचन दिया।

दौलताबाद के युद्ध में एक ओर जमी थी महाबत खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना और दूसरी ओर थी शाहजी एवं बीजापुर की सेनाएँ। मुगलों ने दौलताबाद पर अधिकार ही नहीं किया, हुसैन निजामशाह तथा फतेहखाँ को बन्दी भी बना लिया। उन्होंने सोचा निजामशाही सदा के लिये दफ़ना दी गयी है।

परन्तु शाहजी आसानी से हार मानने वाले नहीं थे। निजामशाही परिवार से ही सम्बन्धित मुर्तजा नामक बालक को सितम्बर १६३३ में निजामशाही की गद्दी पर बैठाकर उन्होंने स्वयं मंत्री का कार्य-भार सम्हाल लिया। तत्पश्चात् उन्होंने बीजापुर नरेश को एक सन्देश भेजा—दौलताबाद का पतन हुआ तो क्या? नये निजामशाह हैं और हम आपके सहयोग की कामना करते हैं।

यह समाचार सुनते ही शाहजहाँ क्रोध से आगबबूला हो उठा। शाहजी को काबू करने का उसने दूसरा उपाय सोचा। फलस्वरूप उसने शिवाजी और जीजाबाई को बन्दी बनाने का एक षड्यंत्र रचा।

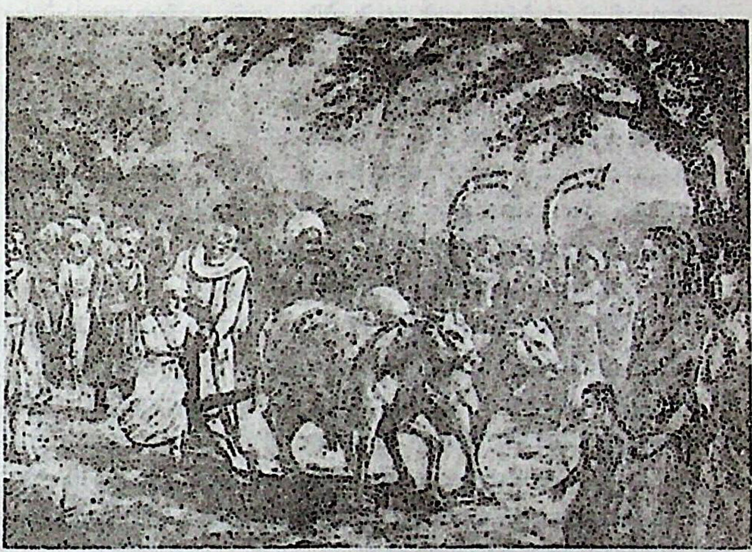
कुछ ही दिन बाद त्र्यम्बक दुर्ग का मुगल सेनापति म्हालदार खाँ जीजाबाई से मिलने आया। बहाना था कि दर्शनार्थ आया है। परन्तु जीजाबाई उसकी चाल को समझती थीं। अत: शिवाजी को उन्होंने पहले ही शिवापुर भेज दिया।

अपने घृणित षड्यंत्र में मुँह की खाने के बाद म्हालदार खाँ ने जीजाबाई को ही बन्दी बना लिया और जीजाबाई के चाचा जगदेव जाधव, जो मुगलों की सेवा में थे, के बीच-बचाव करने के बाद ही उन्हें मुक्त किया।

उधर शाहजी एक तूफान की तरह समग्र दक्षिण पर छाते जा रहे थे। प्राय: सम्पूर्ण निजामशाही सल्तनत को उन्होंने मुगलों से छीन लिया था।

शाहजी की सर्वग्राही विजयों से उत्तेजित हो शाहजहाँ स्वयं दौलताबाद आया और बीजापुर दरबार को धमकी भरा सन्देश भेजा—शाहजी की सहायता करने के भयंकर परिणामों का ध्यान रखो। यदि तुम हमारे साथ सहयोग करोगे तो निजामशाही राज्य का आधा हिस्सा हम तुम्हें पुरस्कारस्वरूप देंगे।

इस धमकी और लालच दोनों ने ही अपना करिश्मा दिखाया। आदिलशाह



बालक शिवाजी ने धरती माँ को प्रणाम कर हाथों में कंचन हल थामा

शाहजी को अकेला छोड़कर शाहजहाँ से जा मिला।

मुर्तजा, बाल शिवाजी तथा जीजाबाई को साथ लेकर शाहजी ने माहुली के किले में शरण ली।

१६३६ का अक्तूबर मास था। मुगल सेनापति खानजमा ने माहुली किले को घेर लिया। दबाव बढ़ता चला गया। शाहजी ने जीजाबाई से कहा—"अब अधिक दिन तक नहीं बचा जा सकता। हमारे प्रयत्न व्यर्थ गये। सन्धि के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं बचा है।"

जीजाबाई ने उन्हें सांत्वना दी—"आपने अपने प्रयत्नों में कोई कसर नहीं रखी। प्रयत्न करना ही हमारा कर्तव्य है। सफलता और असफलता तो ईश्वर के अधीन है।"

अन्ततोगत्वा शाहजी ने मुगलों को दोनों ही समर्पित कर दिये—दुर्ग भी और निजामशाह भी। निजामशाही का अन्त हो गया।

अब शाहजी ने बीजापुर दरबार में सम्मिलित होने का विचार किया। शाहजहाँ ने भी इस शर्त पर कि आदिलशाह शाहजी को कहीं दूर भेज देंगे, इस प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी।

जब शाहजी बीजापुर दरबार में उपस्थित हुए तो आदिलशाह ने कहा—"पूना की जागीर आपके ही अधिकार में रहेगी, परंतु आपको यहाँ से कर्नाटक जाना पड़ेगा।"

शाहजी घर लौटे तो उनकी आँखों में चिन्तायुक्त भाव तैर रहे थे।

जीजाबाई को सम्बोधित करते हुए वे बोले—"हमें कर्नाटक जाना पड़ेगा। परन्तु यदि हम सभी कर्नाटक चले गये तो महाराष्ट्र में हमारा कुछ भी नहीं बचेगा। अतः हमारा विचार है कि तुम शिवाजी के साथ पूना में रहो। हमारा मन कहता है, जो हम न कर सके उसे पूर्ण करने में शिवाजी समर्थ होगा।"

जीजाबाई सहमत हो गयीं। शाहजी बंगलौर चले गये। जीजाबाई शिवाजी को लेकर पूना चली आयीं। उसके साथ दादा कोण्डदेव भी आ गये। शाहजी ने उन्हीं पर अपनी रियासत की देखभाल का भार छोड़ा था।

पूना पहुँचकर शिवाजी ने इधर-उधर दृष्टिपात किया।

"माँ ! नगर उजड़ा सा क्यों नजर आता है ?" उन्होंने जीजाबाई से पूछा।

जीजाबाई ने नगर की दुःख-भरी कहानी अपने पुत्र को सुनायी।

अधिकांश नागरिक नगर छोड़कर चले गये थे। पूना सुनसान नजर आता था। परन्तु जीजाबाई और शिवाजी के आगमन के पश्चात् वातावरण बदलना प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे लोग लौटने लगे। जीवन की हलचल पुनः शुरू हो गयी। मन्दिरों और मकानों का नवनिर्माण प्रारंभ हुआ और गलियों-सड़कों पर लोगों की भीड़ फिर से दिखाई देने लगी।

नयी फसल बोने का मौसम था।

जीजाबाई ने दादा कोण्डदेव को सम्बोधित किया—"पन्त ! हमारे मन में एक विचार आया है।"

"क्या विचार आया है, माँ साहब !" दादाजी ने पूछा।

"लोग वापिस लौटकर आ रहे हैं, तो भी उनमें असुरक्षा का भाव विद्यमान है। अपशकुन का भाव अभी उन्हें घेरे हुए है। वे सोचते हैं यह नगर विनाश को प्राप्त होगा। हमें इस भय को दूर करना है। शुद्ध सोने का एक हल बनवाओ। इस बार भूमि जोतने की रस्म शिवा के हाथों सम्पन्न होगी।"

"बहुत ही सुन्दर विचार है आपका," दादाजी के मुँह से निकल पड़ा।

सोने का हल बनवाया गया और एक शुभ दिन उसे खेत में ले जाया गया। उत्सुक लोगों की भीड़ चारों ओर इकट्ठी होने लगी।

कुल पुरोहित ने मन्त्र पढ़े। शहनाई, ढोल और नगाड़ों की आवाज के बीच बहुमूल्य वस्त्रों से सज्जित सबल बैलों के कन्धों पर कंचन हल रखा गया।

बालक शिवाजी ने धरती माँ को सिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथों में कंचन हल थामा। प्रभात के सूर्य के प्रकाश में जगमगाते हल ने धरती के गर्भ को चीरना प्रारम्भ कर दिया।

हर्षोन्मत्त किसान दर्शक आनन्दविभोर हो चिल्ला उठे और अपने-अपने खेत जोतने के लिये दौड़ पड़े।

पूना का अभिशाप धुल गया। नगर में नवजीवन का ज्वार ठाठें मारने लगा।

५

शुभास्ते पंथानः

विकासोन्मुख पूना शहर। चहलपहल भरी उसकी सड़कें और गलियाँ। इन्हीं प्राणवान गलियों में एक छोटे परन्तु चुस्त घोड़े पर किसी सधे घुड़सवार के समान द्रुतगति से दौड़ता हुआ एक बालक। शिवाजी।

एक खुले स्थान पर उनके मित्र प्रतीक्षा कर रहे थे। सबके हाथ में छोटी-छोटी तलवारें थीं। नंगी तलवारें। प्रसन्नता की मुस्कान बिखेरते शिवाजी घोड़े से कूदे और उनके साथ जा खड़े हुए।

शिक्षक के एक इशारे पर ये सभी खड्ग युद्ध में जूझ पड़े। शिवाजी की तलवार तो मानो चपला हो गयी थी।

शिक्षक के मुख पर सन्तोष की मुस्कान थी। दूसरा संकेत मिलते ही बाल योद्धा जमीन पर बैठ गये। यद्यपि पसीने से लथपथ वे हाँफ रहे थे, तो भी प्रसन्न-वदन थे।

दादा कोण्डदेव शारीरिक खेलों में शिवाजी की दिनोंदिन बढ़ती क्षमता को देखकर गर्व का अनुभव कर रहे थे।

रात्रि के समय रामायण और महाभारत से प्रेरणाप्रद कथाएँ सुनायी जाती थीं। दिन बीत रहे थे और शिवाजी के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास हो रहा था।

विजयादशमी पर्व पर शिवाजी ने शस्त्रपूजन किया। जीजाबाई ने अपने होनहार पुत्र को निहारा और दादा कोण्डदेव से बोलीं—"पन्त ! शिवा दस वर्ष का हो गया है उसके लिये कोई कन्या तलाश की जानी चाहिए।"

स्वीकृति के स्वर में दादा कोण्डदेव ने उत्तर दिया, "ठीक है, माँ साहेब"।

खोज प्रारम्भ हो गयी। जीजाबाई ने फलटन के नाईक निम्बालकर की पुत्री सईबाई को पसन्द किया। शाहजी को सूचना दी गयी, ताकि वे विवाहोत्सव के लिये पधारें।

परन्तु शाहजी राजकार्य में अत्यधिक व्यस्त थे। वे नहीं आ पाये। उनका

आशीर्वाद ही आया—इन सुखद अवसरों को वड़ी धूमधाम से मनाया जाये।

विवाहोपरान्त शिवाजी ने रियासत की देखभाल में रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी। दादा कोण्डदेव के कुशल निरीक्षण में उन्होंने जनता की समस्याओं के समाधान की विधि सीखी।

उधर कर्नाटक में शाहजी ने नित नयी सफलता प्राप्त करके अपना गौरव बढ़ाया। कर्नाटक में बीजापुर दरबार के मुख्याधिकारी रणदुल्लाखाँ से उनकी मित्रता हो गयी।

परन्तु राजनीति वड़ी पेचीदा थी और शाहजी सदैव सतर्क रहते थे। बीजापुर के आदेशानुसार उन्हें बंगलौर, श्रीरंगपट्टन, हास्पेट जैसी कई हिन्दू रियासतों पर आक्रमण करना पड़ा। तो भी शाहजी ने किसी भी हिन्दू राज्य को पूरी तरह नष्ट नहीं किया।

रणदुल्लाखाँ शाहजी की शक्ति से वड़ा प्रसन्न हुआ और शाहजी से बोला—"राजे! हम बंगलौर शहर आपको भेंट करते हैं।"

उद्यानों और फव्वारों से भरा यह सुन्दर नगर शाहजी के मन भा गया। नगर की शोभा के अनुरूप ही उन्होंने एक विशाल महल 'गौरी महल' बनवाया जिसकी ऊपरी मंजिल आकाश से बातें करती थी। यहाँ पर लगने वाला उनका दरबार कला, संस्कृति और विद्या का केन्द्र बन गया।

सब कुछ था, पर शिवाजी का अभाव उन्हें रह-रहकर खटकता था। एक दिन दादा कोण्डदेव को उन्होंने लिख भेजा, "आपसे मिले हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है; अच्छा हो कि रानी साहिबा और युवराज शिवा को लेकर आप बंगलौर पधारें।"

पत्र आते ही पूना में खुशी छा गयी। बंगलौर जाने की तैयारियाँ वड़ी धूम-धाम से प्रारम्भ होने लगीं।

एक शुभ दिन यात्रा प्रारम्भ हुई। नगर-नगर, गाँव-गाँव होते हुए यह दल आगे बढ़ रहा था। शिवाजी ने लोगों की दशा देखी। उनके रीति-रिवाज देखे। उन्होंने इस सम्बन्ध में कई प्रश्न भी किये। एक प्रकार से यह इतिहास और भूगोल का एक लम्बा पाठ था।

सारा बंगलौर युवराज के स्वागत को आतुर था।

'गौरी महल' में प्रवेश करते ही शिवाजी ने पिता के चरणस्पर्श किये। अपने पुत्र को अपने सम्मुख पाकर शाहजी की प्रसन्नता का पारावार न रहा।

शिवाजी की ओर देखकर वे बोले—"शिववा! हम तुम्हारे विवाहोत्सव में सम्मिलित न हो सके। अपनी अनुपस्थिति के उस अभाव की पूर्ति हेतु हम तुम्हारा एक विवाह और रचायेंगे।"

शाही ठाठ-बाट के साथ शिवाजी का दूसरा विवाह किया गया। इस बार



शाहजी का आशीर्वाद ले जीजाबाई और शिवाजी वापिस पूना को चल पड़े

मोहिते वंश की कन्या सोयराबाई से।

काफी समय तक पिता-पुत्र साथ-साथ रहे।

शिवाजी को वह घटना याद आयी जब शाहजी के साथ वह स्वयं भी बीजापुर दरबार गये थे किन्तु सुलतान को सलाम नहीं की थी। शाहजी से शिवाजी ने प्रश्न किया—"पिताजी! साधारण जनता तो निर्धनता में पिसी जा रही है और बीजापुर दरबार ऐश्वर्य लूट रहा है। ऐसा क्यों?"

वेदनापूर्ण शब्दों में शाहजी ने उत्तर दिया, "बेटा! इसका कारण है हमारी गुलामी।"

शिवाजी मौन रहे।

एक दिन शिवाजी वैभवशाली विजयनगर साम्राज्य के अवशेष देखने गये। विजयनगर की गौरवगाथाओं को सुनकर वे विचारों में डूब गये। बन्द आँखों में विचार-स्वप्न का संसार ढालने लगे।

इतिहास का वह पृष्ठ उनके मन-मानस पर अंकित हो गया। अपने पिता की आँखों में झाँकते हुए उन्होंने प्रश्न किया—"क्या विजयनगर जैसी किसी स्वदेशी शक्ति की पुनर्स्थापना सम्भव नहीं हो सकती?"

शाहजी ने अपने पुत्र को निहारा और धीरे से बोलना प्रारम्भ किया—"तुम्हारी माँ भी यही प्रश्न पूछती रहती है। हम भी ऐसी ही कामना करते हैं। परन्तु परिस्थितियाँ हमारे विपरीत हैं। हम निराश हो गये हैं। मुस्लिम सत्ता

सारे देश पर छा गयी है। हमारे अपने ही लोग उनके हस्तक बन बैठे हैं। हम भी विदेशियों के असहाय दास हैं।"

"क्या मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है ?"

"शिवा ! हमने स्वराज्य की स्थापना का प्रयत्न तो किया था, परन्तु अकेले थे। सफलता हमारा वरण करने से कतराती रही।"

एक लम्बा मौन भंग करते हुए अब जीजाबाई ने बात प्रारम्भ की, "इस समय तो आपके तीनों पुत्र और संगठित सेना आपके पास है। क्या एक और प्रयास सम्भव नहीं है ?"

जब शाहजी ने उत्तर दिया तो उनकी आँखें दूर क्षितिज पर गड़ी थीं—"यदि प्रयास होना भी है तो वह इस प्रदेश में नहीं हो सकता। यहाँ हमारे समर्थकों की पर्याप्त संख्या नहीं है। जिन हिन्दू राजाओं से हमें यहाँ युद्ध करना पड़ा है, वे भला हमारा साथ क्यों देंगे ? यदि अब स्वराज्य की पुनःस्थापना का अभियान करना होगा, तो पूना क्षेत्र से ही प्रारम्भ करना पड़ेगा।"

विनम्रता भरे स्वर में शिवाजी ने पूछा, "यदि मैं ऐसा प्रयत्न करूँ, तो क्या आपको आपत्ति होगी ?"

शिवाजी का हाथ अपने हाथ में थामते हुए शाहजी ने कहा, "नहीं शिवबा, बिल्कुल नहीं। परन्तु तुम्हें बहुत भारे खतरों को झेलना पड़ेगा। सर्वस्व त्याग के लिये तैयार होना पड़ेगा।"

"मैं तैयार हूँ" शिवाजी के स्वरों में महान् संकल्प निनादित हो उठा।

चिन्तित दादा कोण्डदेव ने बीच में टोका, "बाल राजे ! तुमने इसके सभी पहलुओं पर विचार कर लिया है न ?"

"हाँ" बिना एक क्षण देर किये शिवाजी ने कहा।

मौन का एक लम्बा क्षण। इसी के गर्भ में एक अटल संकल्प का बीजारोपण हो रहा था।

अन्त में शाहजी ने कहा, "पन्त ! हम जानते हैं हमारा पुत्र क्या करना चाहता है। उसकी माँ के विचार भी वैसे ही हैं। हम भी इसका विरोध नहीं करते हैं।"

शिवाजी के मस्तक पर पितृस्नेह का हाथ फेरते हुए उन्होंने अपनी बात पूरी की—"सत्य तो यह है कि गुप्त रूप से हम तुम्हारी पूरी सहायता करेंगे। प्रारम्भ करने के लिये हम श्रेष्ठतम उपकरण देंगे। शेष तुम जानो।"

शिवाजी की आँखें खुशी से चमक उठीं।

यह महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते ही शाहजी ने कुछ गुप्त आदेश दिये। युवक स्वतंत्रता-सेनानी की सहायता के लिये युद्धकला में निष्णात वीरों का एक दल नियुक्त किया गया और जीजाबाई तथा शिवाजी के पूना लौटने का दिन निर्धारित कर दिया गया।

ज्यों-ज्यों प्रस्थान का दिन निकट आता गया, चिन्तायुक्त खामोशी हवाओं पर सवार होने लगी। परन्तु साथ ही आँखों में एक नयी आशा भी थी।

शाहजी ने कहा, "शिवा! हम फिर दोहराते हैं, हमसे खुली सहायता की आशा मत करना। तुम्हारे प्रयास के लिये हम जो भी अच्छी सहायता दे सकते थे, हमने दे दी है।"

धीमे स्वर में शिवाजी ने कहा, "आपने अभी भी एक चीज मुझे नहीं दी है।"

"वह क्या?"

"आशीर्वाद" कहकर शिवाजी पिता के चरणों में झुक गये।

शाहजी शिवाजी को आलिंगनपाश में बाँधते हुए भर्रायी आवाज से बोले, "बेटा! मेरा आशीर्वाद तो सदैव ही तेरे साथ है।"

तत्पश्चात् एक दिन सुसज्जित हाथी पर सवार हो माता जीजाबाई और शिवाजी पूना जाने के लिये 'गौरी महल' से निकलने लगे तो शाहजी ने जीजाबाई को सम्बोधित करते हुए कहा—"अब से आप ही शिवबा की माता और पिता रहेंगी। ध्यान रहे वह हमारा ही नहीं, हमारी स्वराज्य-संस्थापना की मनोकामना का भी वारिस है।"

और फिर दादा कोण्डदेव को विदाई देते हुए बोले—"शुभास्ते पन्थान: सन्तु!"

६

चीकने पात

शिवाजी माता जीजाबाई के साथ बंगलोर से पूना लौट आये। उनकी आँखों में नयी रोशनी और चेहरे पर नयी आशा व्याप्त थी। हृदय में कुछ अरमान थे जो अन्दर ही अन्दर सुगबुगा रहे थे।

ज्योंही उनके नगर आगमन का समाचार लोगों को मिला, नागरिकों की भीड़ दर्शनार्थ महल की तरफ उमड़ पड़ी। निराशा और अपमान भरे जीवन के बीच उन्हें वही एक आशा की किरण दिखाई देते थे। ज्योतिषियों द्वारा शिवाजी के जन्म के समय की गयी भविष्यवाणियाँ याद कर उनका विश्वास और भी अधिक जमता जा रहा था।

स्वयं शिवाजी ने बड़ा नियमित और संयमित जीवन जीना प्रारम्भ किया था। प्रातः बड़े सवेरे उठकर रात्रि देर तक कार्यरत रहना उनकी आदत बन गयी थी। घुड़सवारी, मल्लयुद्ध और खड्ग द्वन्द्व आदि का उनका अभ्यास अनवरत चलता था। कुछ ही दिन में उनका शरीर वज्र का सा बन गया। बिगड़े से बिगड़े घोड़े भी उनके नीचे आकर सारी अकड़ भूल जाते और उनकी तलवार के वार सम्भाल पाना किसी विरले के ही वश की बात होती थी। मल्लयुद्ध में प्रतिद्वन्द्वी पलक झपकते ही धूल चाटता नजर आता।

शिवाजी जिधर को निकल जाते, लगता शक्तिसूर्य निकल गया हो।

पूना नगर में नवजीवन का संचार हो गया था और बाजारों में पहले जैसी चहलपहल लौट आयी थी। लालमहल सारी गतिविधियों का केन्द्र था और शिवाजी उनके संचालक।

श्राद्ध-पक्ष था। उस दिन माता जीजाबाई बड़ी उदास बैठी थीं। सुबह से उन्होंने एक कौर भी नहीं खाया था। शिवाजी दिन भर बाहर रहने के बाद शाम को लालमहल में लौटे, तो सीधे माता के पास गये। उन्हें इतना उदास देखकर शिवाजी ने पूछा, "माताजी! आपके चेहरे पर दुःख की रेखाएँ देखकर मैं व्याकुल हो उठता हूँ। लगता है आज आपने कुछ खाया-पिया भी नहीं है। क्या मैं इस

सबका कारण पूछ सकता हूँ ?"

"बेटा ! आज तुम्हारे नानाजी और दो मामाओं का श्राद्ध दिवस है। उनके बलिदान का स्मरण कर मन भारी हो आया। खाने-पीने की इच्छा ही नहीं हुई। उन्हें निजाम के भरे दरबार में कत्ल कर दिया गया था और किसी ने उफ तक न की थी। कितनी क्रूरता, कितना अत्याचार !"

शिवाजी के दाँत किटकिटाने लगे। मुट्ठियाँ कस गयीं। आँखों से अंगारे बरसने लगे। उन्होंने कहा, "माँ ! उनका बलिदान व्यर्थ नहीं जावेगा। इन अत्याचारी शासकों से मैं एक-एक कर सब क्रूर कर्मों का बदला लूंगा; एक-एक पाप का हवाला पूछूंगा। माँ ! मैं आपकी सौगन्ध खाता हूँ।"

जीजाबाई ने पुत्र को गले लगा लिया और प्रेम से उनका सिर सहलाने लगी।

कुछ ही दिन के बाद शिवाजी ने दादा कोण्डदेव के साथ मावल प्रदेश के गाँव-गाँव का भ्रमण प्रारम्भ कर दिया। ग्रामवासियों को पहले तो विश्वास ही न होता था कि स्वयं बाल राजे उनके मध्य उपस्थित होंगे। धीरे-धीरे उन्हें शिवाजी का वैशिष्ट्य दिखाई देने लगा।

दुखियों की कुटिया उनके प्रवेश करते ही खुशी से भर जातीं, बीमार आश्वस्त महसूस करता और दुष्ट बदल जाता। जहाँ जो आवश्यकता होती, शिवाजी स्वयं रुचि लेकर पूरी कराते। सबकी समस्याओं को ध्यान देकर सुनते और उनके निवारण का उपाय सोचकर सम्बन्धित अधिकारियों को आवश्यक आदेश देते।

अनेकों मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी कराया। गाँवों की कायापलट हो गयी।

सभी खुश हुए हों ऐसी बात नहीं है। कुछ अधिकारी इस कारण नाराज थे कि उनकी मनमानी अब बन्द हो गयी थी। कुछ ऐसे भी थे जो लोगों की दु:खावस्था में ही फलते-फूलते थे। उनके शोषण करने के अवसर समाप्त हो गये थे। भला उन्हें क्यों अच्छा लगता ?

तो भी इन मुट्ठी-भर लोगों को छोड़कर सारा समाज खुश था। आने वाला भविष्य उन्हें अन्धकारमय नहीं, सुनहरा दिखाई देने लगा था। यह एक बड़ा भारी अन्तर था।

जहाँ-जहाँ शिवाजी जाते, जनता दिल खोलकर उनका स्वागत करती। सारा ग्राम मन्दिर के बाहर इकट्ठा हो जाता और तब शिवाजी उन्हें सम्बोधित करते—"आप निराशा और अपमान का जीवन कब तक जीते रहेंगे ? कब तक विदेशी अत्याचारी शासकों की गुलामी का बोझ ढोते रहेंगे ? इस जुए को उतार फेंकने के लिए मैं आपका आशीर्वाद और सहयोग माँगने आया हूँ। मेरा मार्ग आसान नहीं, कंटकाकीर्ण है। आपको भी अनेक कष्ट उठाने पड़ सकते हैं। स्वराज्य की खातिर आप वह सब बर्दाश्त करने के लिए तैयार हों। हिम्मत से खड़े हों। वे अत्याचारी शासक अपने ही पाप में डूबने वाले हैं। आपने थोड़ा संगठित होकर

एक जोर का धक्का लगाया तो ये सदा के लिये गर्त में चले जायेंगे। फिर कभी नहीं उबरेंगे।"

लोगों में बिजली-सी दौड़ जाती।

उनके समर्थकों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। वृद्ध बाजी पासलकर उन लोगों में से था जिन्होंने सबसे पहले अपने को स्वराज्य के लिए समर्पित किया और फिर आजीवन शिवाजी के साथ छाया की तरह लगा रहा।

ज्यों-ज्यों शिवाजी का सम्पर्क बढ़ता गया, उनका चुम्बकीय प्रभाव अपना असर दिखाने लगा। लोग खिंचे हुए से उनकी ओर चले आते। रोहिडेश्वर के नरसी प्रभु देशपाण्डे का पुत्र दादा, नारेहकर देशपाण्डे के तीनों पुत्र—नारोजी, चिमणाजी और बालोजी—एवं येसाजी कंक, तानाजी तथा सूर्याजी मालसुरे आदि अनेक नवयुवक उनके अभिन्न मित्र बन गये। ये ही आगे चलकर उनके विश्वस्त साथी और कुशल योद्धा सिद्ध हुए। इन्हीं थोड़े से नींव के पत्थरों पर आने वाले कल के स्वराज्य का भव्य भवन खड़ा होना था।

शिवाजी के साथियों का यह दल दिन पर दिन विस्तार पाता चला गया। लालमहल के आँगन में तलवारों की खनखनाहट प्रायः सुनायी देती। वहीं भारत का भविष्य लिखा जा रहा था। विदेशी दासता से मुक्ति की योजनाएं पलने झूल रही थीं।

मल्लयुद्ध, खड्ग और घुड़सवारी का अभ्यास नित्य का क्रम था। रात्रि में किसी मन्दिर के परकोटे में पुजारी से रामायण-महाभारत की कथाएँ सुनते थे और अपनी कर्तव्य रेखाओं को गहरी ही गहरी खींच लेते थे।

खेल में ही शिवाजी अपने साथियों की क्षमताओं और योग्यताओं को भी परखते जा रहे थे। एक-एक साथी का चुनाव बड़े सोच-समझकर करते थे। इन्हीं खेलों में उनके कोने घिसते गये और धीरे-धीरे वे अटूट संगठन सूत्र में बंधते गये।

अब उन्हें अपने घोड़ों पर सवार कभी इस गाँव में तो कभी उस पहाड़ पर देखा जा सकता था। सारा क्षेत्र उन्होंने स्वयं जा-जाकर देखा। बीहड़ पथ अनेक बार उनके घोड़ों की टापों तले रौंदा जा चुका था। थक जाने पर सह्याद्रि की किसी चोटी पर पेड़ के तले जा बैठते। बातें प्रारम्भ हो जातीं और फिर शिवाजी स्वराज्य की कल्पना प्रस्तुत करते। सुनते-सुनते सब साथी स्वयं को भूल जाते। स्वराज्य का स्वप्न ही उनकी आँखों की झील में तैरने लगता।

एक कुशल शिल्पी की तरह शिवाजी ने अपने साधारण से दिखने वाले साथियों को असाधारण स्वतन्त्रता सेनानियों की अमूल्य मूर्तियों में परिवर्तित कर दिया।

इसका प्रभाव जनसाधारण पर भी स्पष्ट दिखाई देता था। शिवाजी के साथी अब जिधर को भी निकलते, लोग उन्हें होनहार लाड़ले समझकर अपना आदर और प्रेम देते। जो बन पड़ता, वह सहायता और सुविधा उपलब्ध करते। कुछ ही



थक जाने पर सब साथी किसी पेड़ के तले जा बैठते और शिवाजी स्वराज्य की कल्पना प्रस्तुत करते

दिनों में स्वराज्य का नन्हा दीया घर-घर में टिमटिमाने लगा। किसानों के घर में हल के साथ-साथ तलवार भी टँगी दिखाई देने लगीं। उनके बलिष्ठ पुत्र हल ही नहीं, तलवार और भाला भी चलाने लगे।

एक दिन संध्या के समय दादा कोण्डदेव ने माता जीजाबाई से कहा, "माँ साहेब! बाल राजे ने लोगों के दिलों में जगह बना ली है। गाँव-गाँव में लोग बड़ी श्रद्धा और स्नेह से उनका स्मरण करते हैं।"

"ये ग्राम ही तो स्वराज्य की सबसे पहली इकाई हैं पन्त! एक बार वहाँ स्वराज्य की कल्पना पंख फड़फड़ाने लगे, तो फिर इन अत्याचारी शासकों से निपटना बड़ा आसान हो जायेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके संरक्षण में यह युवा-दल स्वराज्य की ढाल और कृपाण बन जायेगा।" माता जीजाबाई ने संतोष की साँस लेते हुए कहा।

जिस समय उनकी यह बात हो रही थी, उसी समय महल के दरवाजे से शिवाजी और उनके साथी अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो बाहर निकल रहे थे। सबकी कमर पर लटकी थी तलवार और पीठ पर चिपकी थी ढाल।

७
लहू की कसम

शिवाजी की आँखों में भारत का भविष्य आकार लेता जा रहा था और मन में अरमानों के तूफान उमड़ रहे थे। प्रायः आकाश की ओर दृष्टि गड़ाये वे बादलों को निहारते रहते। सारे क्षेत्र का अध्ययन, भ्रमण और ठोक-बजाकर छाँटे गये साथियों का चयन कर लेने के बाद एक ही प्रश्न उनके सामने बार-बार उभरकर खड़ा हो जाता—

अब आगे क्या ? आखिर कब ?

माता जीजाबाई के पास पहुँचकर उन्होंने अपनी मनोवेदना प्रकट की—"माताजी ! मन अब कुछ कर गुजरने को व्याकुल है। स्वप्न तक मे कोई पुकारता नजर आता है। लगता है जैसे कोई कह रहा हो 'यही समय है। आगे बढ़ो ! अनाचार के मर्म पर सीधे चोट करो। चलो, बढ़ो और बढ़ते ही जाओ !' माताजी, आप हमारा मार्गदर्शन कीजिए !"

"शिवा बेटा ! अशान्त न हो। मैं तो स्वयं कभी-कभी तुम्हारे मुख पर अद्वितीय तेज देखकर आश्चर्यचकित हो उठती हूँ। इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है कि उस अदृश्य शक्ति का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हुआ है। तो भी हमारी इच्छा है कि आप दादा कोण्डदेव…"

"राजमाता, आपने मुझे स्मरण किया ?" दादा कोण्डदेव ने, जो संयोगवश उधर से गुजर रहे थे, जीजाबाई से पूछा, "बाल राजे इतने गम्भीर क्यों नजर आ रहे हैं ?"

तीनों जीजाबाई के निजी कक्ष में विचार-विमर्श के लिये बैठे बात कर ही रहे थे कि एक सैनिक ने समाचार दिया—"राँझा के पाटिल ने एक स्त्री पर बलात्कार किया है, उसका शीलभंग किया है। क्षेत्र की बेबस जनता त्राहि-त्राहि कर उठी है, महाराज !"

शिवा का हाथ तलवार की मूठ पर जा टिका और दाँत कस गये। आँखों में अंगारे सुलगने लगे। क्रोध के मारे मुँह से शब्द भी नहीं निकल रहे थे।

माता जीजाबाई ने सैनिक से कहा—"जाओ और जितनी जल्दी हो उस दुष्ट की मुश्क बाँधकर यहाँ लालमहल में पेश करो।"

सैनिक चला गया।

जीजाबाई ने कहना शुरू रखा—"शिवा ! राँझा के पाटिल के दुष्कर्मों पर आपकी प्रतिक्रिया देखकर हमें प्रसन्नता हुई। परन्तु इस समय तो हम दादा कोण्ड-देव से परामर्श करने के लिये बैठे थे। इतना अशान्त होने से काम नहीं चलता।"

"हाँ बाल राजे ! माँ साहेब का विचार ठीक है। ऐसे बहुत से प्रसंग जीवन में आयेंगे। उस समय आपके विवेक और न्यायप्रियता की परीक्षा होगी। क्रोध इन दोनों का शत्रु होता है। खैर, आपने मुझे किसलिये स्मरण किया ?" दादा कोण्डदेव ने पूछा।

अब तक शिवाजी शान्त हो चुके थे। उन्होंने कहा—"पन्त ! हम हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना के लिये अब प्रत्यक्ष कार्य करना चाहते हैं। आपका क्या मत है ?"

एक लम्बी श्वास खींचकर दादा कोण्डदेव ने उत्तर दिया—"बाल राजे ! हमें आपकी चारित्रिक शक्ति और निश्चय की दृढ़ता पर गर्व है। परन्तु फिर भी कुछ स्पष्ट बातों के लिये आप हमें क्षमा करें तो..."

"दादाजी !" जीजाबाई ने धीमे से टोका, "शिवा के पिता ने आपके संरक्षण में ही हमें छोड़ा है। कड़ुवा ही क्यों न हो, ठीक परामर्श देना आपका अधिकार है। हमारा ही नहीं, स्वराज्य का भी आपसे अधिक चिन्तक और कौन हो सकता है ?"

"हाँ, हाँ, दादाजी ! कृपा कर हमारा मार्गदर्शन करिए और निःसंकोच होकर अपना अमूल्य अभिमत व्यक्त करिए," शिवाजी दादा कोण्डदेव के मुँह की ओर देख रहे थे।

दादा कोण्डदेव ने कहना प्रारम्भ किया—"आपकी स्वराज्य की कल्पना बड़ी मोहक है। इस वृद्धावस्था में भी स्वातन्त्र्य का ध्यान कर स्वयं मेरी धमनियों का ठण्डा पड़ता रक्त गर्म हो उठता है। तो भी वास्तविकताओं से आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं। मुझे अभी ऐसा नहीं लगता कि यह स्वप्न साकार हो जायेगा। सारा देश यवनों की कृपा पर है और उनकी राक्षसी शक्ति से लोहा लेने का प्रयत्न करने का अर्थ है किसी चट्टान से अपना सिर टकराना।"

शिवाजी की कनपटी गर्म हो गयीं। उन्होंने पूछा—"पन्त ! फिर तो स्वातन्त्र्य का प्रयत्न कभी प्रारम्भ ही न हो सकेगा।"

"बाल राजे ! हमारा कहना यह नहीं है। नीति के रूप में यवनों के अधीन रहकर ही अपने लोगों की अधिक से अधिक सेवा की जाय, यह हमारा सुझाव है। जब कभी अवसर आये तो हम या हमारी आने वाली पीढ़ियाँ स्वराज्य संस्थापना

का स्वप्न साकार कर लें। अभी फिलहाल हमें नहीं लगता कि हम उनसे दो-दो हाथ कर सकते हैं," दादा कोण्डदेव का मत था।

"पन्त ! क्या आप ऐसा मानते हैं कि आजादी भीख माँगने से मिलेगी ? इन यवनों के टुकड़ों पर पलना और उनके दिये ओहदों को लेकर खुश होना, क्या कुत्तों का सा जीवन व्यतीत करना नहीं है ?"

"बाल राजे ! आपका विचार निष्कलंक है। परन्तु लाचारी से कैसे निपटें ? आपके पूज्य पिताजी ने भी कम प्रयत्न नहीं किया। उन जैसा तूफानी व्यक्ति भी असफल रहा। मुझे लगता है हिन्दू स्वातन्त्र्य का समय अभी नहीं आया है," दादा कोण्डदेव ने अपनी बात स्पष्ट शब्दों में कही।

शिवाजी थोड़ी देर मौन रहे। फिर बोले—"नहीं पन्त ! नहीं ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि यही उषाकाल है जब हिन्दू-स्वातन्त्र्य-सूर्य संकट-मेघ-मालाओं को चीरकर भारत-आकाश पर अपनी आभा बिखेरेगा। हम अपने प्रयत्नों में अब जितनी और देर करेंगे, उतनी ही हमारी शक्ति कम होती चली जायेगी। एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि स्वयं ईश्वर भी हमारी मदद न कर सके।"

"बाल राजे ! अपनी मुट्ठीभर शक्ति का तो विचार करो ! कहाँ हम और कहाँ विधर्मी शासकों की विशाल शक्ति !" दादा कोण्डदेव ने फिर कहा, "हमें अभी भी यही लगता है कि स्वराज्य संस्थापना का कार्य किसी और पर छोड़ दिया जाय।"

"दादाजी ! वह कोई और कहाँ से आयेगा ? वह भी स्वातन्त्र्य का भव्य भवन कैसे निर्माण कर पायेगा ? किसी को तो नींव का पत्थर बनना ही पड़ेगा। यदि यह भी मान लें कि अगली पीढ़ी ऐसा करने में सक्षम हो सकती है, तो भी मेरी पीढ़ी के लिये नींव में गलना आवश्यक है," शिवाजी ने गम्भीरता से अपनी बात रखी।

"शिवा की इस बात से तो मैं भी सहमत हूँ, पन्त ! सफलता किसी भी पीढ़ी को मिले, प्रयत्न तो जब अवसर मिले तभी कर देना चाहिए। बार-बार चोट करने से ही इस पाशविक शक्ति की कमर टूटेगी," माता जीजाबाई ने शिवाजी का समर्थन किया।

दादा कोण्डदेव विचारों में खो गये।

शिवाजी ने फिर बोलना प्रारम्भ किया—"पन्त ! आप आशंकाओं से मुक्त रहें। हम आपको वचन देते हैं कि सदैव भयमुक्त रहेंगे यदि···"

"यदि क्या बाल राजे ? आप रुक क्यों गये ?" दादा कोण्डदेव ने उत्सुक हो पूछा।

"···यदि आपका आशीर्वाद हमारे साथ रहा।"

दादा कोण्डदेव प्रसन्न हो मुस्करा उठे—"माँ साहेब इस बात की साक्षी हैं।



शिवाजी के दायें हाथ में नंगी तलवार थी और बायें हाथ की प्रथम उँगली से खून की बूँदें शिवलिंग पर गिर रही थीं

हमने आपके पूज्य पिता शाहजी को वचन दिया है और आज पुनः दोहराते हैं कि हम सुख में और दुःख में बाल राजे के साथ रहेंगे।"

उसी दिन से रोहिडेश्वर के मन्दिर को खूब सजाना प्रारम्भ हो गया। यहीं ७ दिन बाद शिवाजी को स्वातन्त्र्य की प्रतिज्ञा लेनी थी।

आखिर वह शुभ दिन भी आ गया। प्रातः से ही मन्दिर के आँगन में कटि पर तलवार और पीठ पर ढाल लटकाये मावले वीर उन्नत मस्तक किये घूम रहे थे।

प्रसन्नवदन शिवाज़ी ने अपने साथियों की ओर देखा। सभी तो थे—नेताजी पालकर, येसाजी कंक, तानाजी मालसुरे, दादाजी नारसप्रभु गुप्ते।

ये ही क्यों! दादाजी कोण्डदेव, बाजी पासलकर और नरसी प्रभु जैसे अनुभवी राजनेता भी उपस्थित थे।

पुजारी ने शिवलिंग का अभिषेक पूर्ण किया और सभी शिवलिंग के चारों ओर खड़े हो गये।

हाथ जोड़े सभी प्रार्थना में लीन थे।

जब आँखें खोलीं तो वे आश्चर्यचकित रह गये। एक घुटने के बल बैठे शिवाजी के दायें हाथ में नंगी तलवार थी और बायें हाथ की प्रथम उँगली से खून की बूँदें एक-एक कर शिवलिंग पर गिर रही थीं।

तत्पश्चात् हिन्दवी स्वराज्य की संस्थापना के लिये सभी ने इसी प्रकार सौगंध ली।

मन्दिर के आँगन में पहुँचकर स्वयं शिवाजी ने अपने हाथ से स्वराज्य का ध्वज, भगवाध्वज, फहराया।

सभी ने ध्वज प्रणाम किया।

बाजी पासलकर, जो उनमें सबसे वृद्ध थे, आगे बढ़े और शिवाजी के सम्मुख नतमस्तक हो बोले—"हिन्दवी स्वराज्य के संस्थापक महाराज शिवाजी को मेरा प्रणाम।"

शिवाजी का हृदय भर आया। रुँधे कण्ठ से बोले, "आप सब आदरणीय वृद्धजनों को मेरा प्रणाम।" और फिर उन्होंने दादा कोण्डदेव, बाजी पासलकर, नरसीबाबा आदि सबके चरणस्पर्श किये।

कुछ दिन बाद जिस समय शिवाजी अपने साथियों के साथ बातचीत कर रहे थे, सैनिक राँझा के पाटिल को बाँधकर ले आये।

२६ मई, १६४२ का दिन था।

गवाहियाँ हुईं और राँझा के पाटिल का अपराध सिद्ध हुआ।

शिवाजी ने निर्णय सुनाया—"इसने एक देवी के साथ बलात्कार करने का जघन्य पाप किया है। स्वराज्य में इसके लिये कोई क्षमा नहीं हो सकती। इसके हाथ-पैर काट दिये जायें।"

लोगों को जब इस निर्णय की सूचना मिली तो दुष्ट-हृदय घबरा गये। साधारण जन को लगा कि उनका रक्षक बड़ा न्यायप्रिय है। अब उनका राजा एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी मुहर पर प्रसिद्ध संस्कृत वाक्य अंकित है—

प्रतिपच्चंद्र लेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववंदिता।
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

अर्थात् शाहजी के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा नवचन्द्र की भाँति प्रभाव में बढ़ती जायेगी, सम्पूर्ण संसार का आदर प्राप्त करेगी और श्रेष्ठता के प्रकाश से दीप्तिमान होगी।

८

विजय-तोरण

सन् १६४५

नवयुवक शिवाजी अपने घोड़े की पीठ पर सवार हो एक घने छायादार वृक्ष के नीचे सुस्ता रहे थे। थोड़े से मावले सरदार भी उनके साथ थे। वर्षों से उनका यह क्रम चला आ रहा था कि प्रभात वेला या अँधेरी रात्रि में घर से निकलते और सह्याद्रि के बीहड़ वन-प्रान्तर को पार करते अनजाने मार्गों से गुजरते कई-कई घण्टे घोड़ों की पीठ पर ही व्यतीत कर देते। थक जाते तो वहीं कहीं किसी बुढ़िया की कुटिया में, किसी पेड़ के तले, किसी नदी के किनारे या किसी पहाड़ी खोखर में थोड़ी देर विश्राम करते और फिर आगे चल देते। आज साहस शिक्षण का अन्तिम दौर समाप्त कर ये सब लोग इस विशाल वृक्ष के नीचे एकत्रित थे।

पलक मारते ही सब अपने-अपने घोड़े से कूद पड़े और घोड़ों को हरी-हरी घास चरने को छोड़ने के बाद मण्डल बनाकर बैठ गये।

शिवाजी ने सबकी ओर ध्यानपूर्वक देखा और बोलना प्रारम्भ किया "मित्रो! हमारा प्रशिक्षण कार्य समाप्त हो गया है। अब हमें अपने अर्जित ज्ञान को स्वराज्य के निर्माण-कार्य में लगाना है।"

"हाँ, आप ठीक कह रहे हैं राजे!" सब साथी एक स्वर से बोल उठे, "निर्देश दीजिए, हमें क्या करना है।"

"मैं और आप सब स्वराज्य स्थापना के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हैं। अपने ही देश में अब हमें गुलाम बनकर जीवन व्यतीत करना अस्वीकार है। अपने धर्म और संस्कृति का अपमान और उन्मूलन आगे न होने देने के लिये हमने कसम खायी है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु स्वराज्य की स्थापना करने की हमने ठानी है। प्रारम्भ में हमारी कर्मभूमि सह्याद्रि की ये पर्वत शृंखलाएं रहेंगी, अतः इन पर बने किलों का विचार हमें अवश्य करना चाहिए।"

"किलों के सम्बन्ध में तो हमारी जानकारी पूरी है राजे!" एक सरदार ने बीच में टोका, "किलों की कुल संख्या, कौन किला कहाँ और कितना दुर्गम है,

प्रत्येक किले की सामरिक क्षमता कितनी है, आदि बातों का हमने प्रत्यक्ष जाकर अध्ययन किया है। हमारे पास सबके प्रामाणिक आँकड़े हैं।"

"आपकी बात बिल्कुल ठीक है। परन्तु इस समय मैं इन किलों के सामरिक महत्त्व की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाह रहा हूँ। मेरा विचार है कि स्वराज्य संस्थापन का कार्य प्रारम्भ करने के लिये यदि इस समय सर्वाधिक अनुकूल क्षेत्र महाराष्ट्र है, तो सह्याद्रि के दुर्ग अपने अधिकार में कर लेना उसकी पहली शर्त है।"

शिवाजी के सरदारों की आँखों में एक चमक आ गयी।

शिवाजी ने अपनी बात पुनः प्रारम्भ की, "अब हमारे अभियान, किलों के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्र करने के लिये नहीं, उन्हें विजय करने के लिये होंगे।"

"आपने ठीक ही निर्णय लिया है, महाराज," तानाजी ने कहा, "हमारा पहला लक्ष्य तोरणगढ़ रहे तो आपको कुछ आपत्ति है क्या?"

"आपत्ति क्यों होगी, तानाजी!" शिवाजी ने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा, "स्वराज्य का शुभारम्भ यहीं से होना चाहिए। देवी तोरणजाई का मन्दिर म्लेच्छों से मुक्त कराने से हमें देवी का आशीर्वाद प्राप्त होगा; भविष्य के लिये हमारी सफलता का मार्ग प्रशस्त होगा।"

"हम सब अभी इसी समय तैयार हैं, महाराज!" सब सरदार एक साथ बोल उठे।

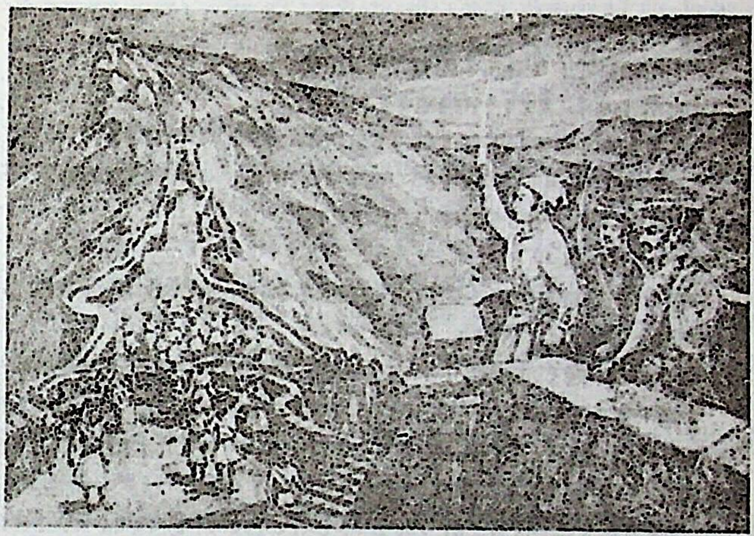
"नहीं, इतना जल्दी में नहीं। गुप्तचरों को सब सूचनाएँ एकत्र करने के लिये भेजो। अपने आक्रमण की एक-एक योजना के बारीक से बारीक पहलू पर गम्भीरता से विचार करो और तत्पश्चात् अभियान। इससे सफलता मिलने में कोई सन्देह बाकी न रहेगा। तोरणगढ़ पर परसों सूर्य निकलने से पहले धावा बोलेंगे। उससे पहले यह सब कर लेना चाहिए।"

निर्णय करने के बाद सब अपने-अपने घोड़े की पीठ पर सवार हो चल दिये।

सम्पूर्ण प्रबन्ध कर लिया गया। जो गुप्तचर तोरणगढ़ भेजे गये थे, वे भी लौट आये। मुख्य गुप्तचर शिवाजी को बता रहा था, "महाराज! सुनहरी अवसर है, इस अवसर को हाथ से न जाने दें। इस विशाल दुर्ग पर सुरक्षा व्यवस्था अत्यन्त ढीली है। हमारे हमले का मुकाबला कर पाना उनके लिये बिल्कुल असम्भव है। यदि आक्रमण अचानक किया गया तो वहाँ की सुरक्षा-पंक्ति चरमराकर टूट जायेगी और दुर्ग पर अपना अधिकार सरलता से हो जायेगा।"

"शाबाश! तुम लोगों ने बड़ी चतुराई से अपना कार्य पूरा किया है। अब हमारी बारी है। आप जाइए और विश्राम कीजिए।" शिवाजी ने गुप्तचरों को विदा किया।

रात के अँधेरे में तोरणदुर्ग के चारों ओर झाड़ियों, पेड़ों आदि के नीचे



तोरण दुर्ग पर अधिकार करके भगवा ध्वज फहरा दिया गया

मावले सैनिक छिपकर बैठ गये।

सूर्य की पहली किरण फूटने से पूर्व ही 'हर-हर महादेव' की ध्वनि सुनायी दी। आदिलशाही सैनिक समझ भी न पाये कि क्या हुआ। वे तो नींद में ऊँघ रहे थे। शिवाजी के सैनिकों ने धावा बोल दिया और दुर्ग पर अधिकार भी कर लिया। बीजापुर की सेनाओं ने हल्का सा विरोध किया परन्तु शीघ्र ही हथियार डालने पर मजबूर हो गये।

तोरणदुर्ग पर भगवा ध्वज लहराने लगा। शिवाजी का प्रथम अभियान पूर्ण सफल रहा।

ध्वजारोहण के तुरन्त बाद शिवाजी सीधे तोरण देवी के मन्दिर पहुँचे। हाथ जोड़, आँखें बन्द कर वे देवी के सम्मुख नतमस्तक हो खड़े रहे, मानो प्रार्थना कर रहे हों—"माँ! तेरे आशीर्वाद से हमने यह सफलता प्राप्त की है। अपनी कृपा बनाये रखना। स्वराज्य की स्थापना होने न होने पर ही इस हिन्दू जाति का और भारतवर्ष का भविष्य निर्भर करता है। आशीर्वाद दो माँ! हम सफलता के नित नवीन शिखर चढ़ते चलें जायें। अपने स्वयं के लिये नहीं, इस देश और समाज के लिये।"

फिर शिवाजी स्वयं किले का निरीक्षण करने के लिये निकले। किले की प्राचीर जगह-जगह से ढह गयी थी। यदि शीघ्र मरम्मत न की गयी तो सुरक्षा व्यवस्था कितनी ही सुदृढ़ होने पर भी कमजोर ही रहेगी। इस सबके लिए अपार

धन चाहिए।

कहाँ से आयेगा ? कहाँ से आयेगा इतना धन ?

शिवाजी खड़े रह गये। सोचने लगे।

आखिर यही निश्चय किया गया कि जितने धन की व्यवस्था है, उतने ही धन से अत्यन्त आवश्यक मरम्मत का कार्य कराया जाय। नयी सुदृढ़ प्राचीर का विचार पर्याप्त धन होने तक स्थगित रखा जाय।

कार्य शुरू हुआ।

अगले दिन शिवाजी पूजन-अर्चन के बाद मन्दिर से लौटे ही थे कि बाजी पासलकर ने अभिवादन किया।

"आज बड़े सवेरे ही बाजी ! क्या माजरा है ?" शिवाजी ने मुस्कराकर पूछा।

"बड़ा शुभ समाचार है, महाराज !" बाजी पासलकर ने कहा, "प्राचीर की मरम्मत करते समय स्वर्णमुद्राओं से भरे ताम्बे के अनेक घड़े मिले हैं। सबका विचार है पहला घड़ा आपके द्वारा स्वयं निकाला जाय।"

"अब मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि हमारे कार्य को ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त है। चलिए हम भी उधर चलते हैं। परन्तु घड़े निकालने का शुभारम्भ दादा कोण्डदेव जी के करकमलों से होगा। हमारी ओर से उनसे प्रार्थना करिए। आप चलिए, हम भी आते हैं।" शिवाजी ने प्रसन्न हो कहा।

धन प्राप्त होते ही तोरणगढ़ के चारों ओर एक नवीन विशाल प्राचीर का निर्माण प्रारम्भ कर दिया गया। इतना ही नहीं, तोरणगढ़ से कुछ मील दूरी पर बीजापुर द्वारा अर्धनिर्मित एक और दुर्ग था। उस पर भी वीर मराठों ने देखते ही देखते अधिकार कर लिया। इसी दुर्ग को शिवाजी ने अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया। एक विशिष्ट दुर्ग के रूप में इसका निर्माण कराया गया। इसका नाम रखा गया राजगढ़।

अब क्या था। शिवाजी ने आदिलशाही के एक के बाद एक किले पर अपना अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया।

शिरवाल के अमीन की बेचैनी बढ़ने लगी। कभी समाचार आता कि शिवाजी ने यह किला जीत लिया है। कभी पता चलता वह किला भी बीजापुर के हाथ से निकल गया। फिर समाचार मिला कि शिवाजी राजगढ़ पर अपनी राजधानी का निर्माण कर रहा है। एक दिन खबर आयी कि रोहिडेश्वर के दादाजी नरसीप्रभु ही नहीं और भी कई देशपाण्डे और देशमुख शिवाजी का साथ दे रहे हैं।

अमीन ने बीजापुर दरबार को लिख भेजा। तुरन्त सेना भेजने की प्रार्थना की।

बीजापुर से सेना नहीं आयी।

धीरे-धीरे देशमुखों, देशपाण्डों ने शाही खजाने में मालगुजारी जमा करना

भी बन्द कर दिया। अमीन की बेचैनी बढ़ गयी। उसने बीजापुर को पुनः लिखा। बीजापुर ने देशमुखों और देशपाण्डों को धमकी भरा पत्र भेजा कि वे शीघ्र से शीघ्र अपने को अमीन के सम्मुख पेश करें अन्यथा उन्हें कठोर से कठोर दण्ड के लिये तैयार रहना चाहिए।

नरसीप्रभु घबरा गया। बीजापुर वाले उससे अत्यन्त क्रोधित हो उठे थे क्योंकि उसका युवा पुत्र दादाजी शिवाजी के प्रमुख साथियों में से था।

नरसीप्रभु के भयभीत होने की बात शिवाजी को पता चली तो उन्होंने १० अप्रैल, १६४५ को अपने साथी युवा दादाजी को पत्र लिखा—"हम एक पवित्र संकल्प से बँधे हैं। दुःख-सुख में हम सदैव तुम्हारे साथ रहेंगे। बाबा को हम वचन देते हैं कि हमारी मित्रता की शपथ अटल है और स्वराज्य-प्राप्ति का संकल्प ईश्वर प्रेरित।"

नरसीप्रभु भयमुक्त हो गये। अब शिवाजी जिधर को भी निकलते नये-नये सहयोगी उन्हें मिलते।

शिवाजी का उत्साह और आकांक्षाएँ बढ़ती चली गयीं। रोज नये-नये तोरण दुर्ग उनके स्वागत में विजय तोरण बनकर खड़े होते चले गये।

९

देवदूत

जावली पर शिवाजी का अधिकार हो गया था। स्वाभाविक ही लोगों की आकांक्षाएँ और अपेक्षाएँ बढ़ती जा रही थीं। स्वराज्य के विस्तार के साथ ही उसकी सुरक्षा और सुव्यवस्था का भार भी बढ़ता जा रहा था। इसके लिये चाहिए थे सुदृढ़ और सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण दुर्ग, सेनाओं का पुनर्गठन और कुशल शासनाधिकारी। इन सबके लिये आवश्यकता थी धन की। जितना धन आता था, उतना ही अभाव बढ़ता जाता था।

उस दिन शिवाजी और उनके साथी दुर्ग पर एक गुप्त मंत्रणा में लीन थे। सम्पूर्ण क्षेत्र का मानचित्र टँगा था और शिवाजी की उँगलियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम रही थीं। जावली को छूने के बाद उन्होंने बोलना प्रारम्भ किया—"इस क्षेत्र पर अपना अधिकार हो ही गया है। लगे हाथ इधर कोंकण तट भी क्यों न अपने कब्जे में लिया जाय? ये रहा यहाँ। बहुत अधिक दूर नहीं है।"

उनके साथियों ने मानचित्र पर निगाहें गड़ा दीं।

सरदार आबाजी सोनदेव ने समर्थन किया—"आपका कहना बड़ा समयोचित है महाराज! यह कल्याण और भिवंडी का क्षेत्र दक्षिण में सर्वाधिक सम्पन्न प्रदेश माना जाता है। कल्याण तो हमारे देश के विदेशी व्यापार की धुरी है। यहीं से व्यापारिक जहाज सुदूर देशों को व्यापार के लिये जाते हैं। हमारी आर्थिक···"

"हाँ, हमारी आर्थिक परेशानियों का हल हमें यहाँ मिल सकता है। अब धन तो चाहिए। इसके बिना स्वराज्य का काम नहीं चलेगा," मानचित्र पर दृष्टि दौड़ाते हुए शिवाजी ने बीच में ही टोका, "कल्याण धनागार है। हमें दुर्ग-निर्माण के लिये तुरन्त धन चाहिए।"

उनके साथी टकटकी बाँधकर देख रहे थे। अब उन्हें आभास हो गया था कि शिवाजी की इच्छा क्या थी।

हीरोजी ने कोंकण प्रदेश की स्थिति का विश्लेषण प्रारम्भ किया, "महाराज! इस समय कोंकण की राजनीतिक अवस्था बड़ी अस्थिर है। बीजापुर के मुहम्मद

आदिलशाह के निधन के बाद, औरंगजेब आदिलशाही रियासत में निडर होकर अपने विजय अभियान चला रहा है। स्वयं बीजापुर दरबार में उसका मुकाबला करने की हिम्मत नहीं बची है। अतः वहाँ भी लोग कोंकण प्रदेश के दुर्ग मुगलों को सौंप देने का विचार कर रहे हैं।"

शिवाजी ने तत्काल उत्तर दिया, "तब तो हमें और भी जल्दी करनी चाहिए। एक बार मुगलों का आधिपत्य होने के बाद कोंकण विजय करना ज्यादा कठिन हो जायेगा।"

कोंकण अभियान का निर्णय कर लिया गया और हीरोजी का आदेश हुआ कि वे तत्काल अपने चुने हुए गुप्तचर उस प्रदेश में भेजकर पूरी-पूरी जानकारी इकट्ठा करायें।

इस बीच मराठा सेनाओं ने कूच करने की तैयारियाँ करना प्रारम्भ कर दिया।

कुछ ही दिन बाद हीरोजी ने सूचना दी, "कल्याण में एकत्रित बीजापुर दरबार की मालगुजारी जल्दी ही बीजापुर ले जायी जाने वाली है। बहुत अधिक खजाना है। यह अपने लिये स्वर्ण अवसर है।"

समाचार मिलते ही शिवाजी ने अपने साथियों को आदेश दिया, "बिना समय बरबाद कियें आप लोग सेना लेकर कल्याण की ओर प्रस्थान करें। हम भी वहीं कहीं आसपास होंगे।"

मराठा सैनिक कल्याण के निकट घाटी की झाड़ियों और खंदकों में जा छिपे और खजाना आने की प्रतीक्षा करने लगे। वहाँ से गुजरने वाले इक्के-दुक्के लोगों को उनकी छाया तक दिखाई नहीं देती थी। किसी को शक की कोई गुंजाइश नहीं थी।

उधर बीजापुर के सैनिकों से घिरी दो पालकियाँ टेढ़े-मेढ़े मार्गों से आगे को बढ़ती जा रही थीं। दोनों ओर ऊँची चोटियाँ और बीच में तंग पहाड़ी मार्ग। ज्योंही एक मोड़ पर आकर वे बहुत सँकरे मार्ग पर आये कि 'हर हर महादेव' का जयघोष करते मावले सैनिक उन पर आ टूटे।

जैसे तलवार चलाने की तो आवश्यकता ही न पड़ी। बीजापुर के सैनिक अवाक् देखते रह गये और दूसरे ही क्षण अपने दोनों हाथ उठाकर खड़े हो गये।

आबाजी सोनदेव के सैनिकों ने उनके हाथ पीछे बाँध दिये। आबाजी स्वयं पालकियों के पास पहुँचे। ज्योंही वे पीछे वाली पालकी की ओर बढ़े कि उसमें से एक कोमल चीख सुनायी दी।

मराठा सरदार आश्चर्यचकित रह गये। पालकी का पर्दा हटाकर अन्दर झाँका तो भय से काँपती बुर्के में लिपटी एक महिला नजर आयी। भय के मारे उसके गोरे-गोरे हाथों में कोहनी तक भरी चूड़ियाँ आपस में रगड़ खाकर खनखना रही

थीं। बेचारी पालकी के कोने में समा जाने को व्याकुल थी।

"हुज़ूर रहम करें। पर्दानशीन कमसिन हमारे शाहजादे की बेगम साहिबा हैं। कल्याणपुर से बीजापुर जा रही थीं। हम आपको हाथ जोड़ते हैं, इन पर रहम खायें।" मुसलमान सूबेदार मुल्ला मुहम्मद गिड़गिड़ाकर आबाजी के चरणों में गिर पड़ा, "इनको अगर कुछ हो गया तो हम कहीं के न रहेंगे, हमारे बीवी-बच्चों को सुलतान कोल्हू में पिलवा देगा। रहम करें, हुज़ूर, रहम करें।"

"हाँ, हाँ, रहम करेंगे," कहते हुए आबाजी ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी, "दोनों पालकियाँ उठा लो। शिवाज़ी महाराज के सामने पेश करेंगे।"

इसी बीच एक दूसरी टुकड़ी ने धावा बोलकर कल्याण नगर पर अधिकार कर लिया। वहीं नगर के बीचोंबीच शिवाजी के स्वागत की तैयारियाँ की गयीं। जगह-जगह तोरण द्वार बनाये गये थे और स्वागतस्थल को खूब सजाया गया था। सब नर-नारी पलक-पाँवड़े बिछाये अपने उद्धारक की प्रतीक्षा कर रहे थे।

धूम-धड़ाके के साथ विजेता शिवाजी ने नगर में प्रवेश किया और मुख्य बाजार से होते हुए स्वागतस्थल पर पहुँच कर मंच पर अपना स्थान ग्रहण किया। मंच के दोनों ओर मावले सरदार और कुछ स्थान छोड़कर सामने नगर के नर-नारी इकट्ठा हुए।

आबाजी सोनदेव ने आगे बढ़कर शिवाजी को अभिवादन किया और सील-बन्द खजाने के सन्दूक प्रस्तुत करते हुए बोला, "आपके आशीर्वाद से हमने बीजापुर का यह खजाना अपने अधिकार में कर लिया है। खजाने के साथ सब सैनिक, उनके सरदार सूबेदार मुल्ला मुहम्मद के सहित हमने कैदी बना लिये हैं। इनके साथ कैसा बर्ताव किया जाये, आज्ञा दीजिए महाराज!"

"खजाना शासनाधिकारियों के हवाले कर दो और अगले निर्देश तक इन सैनिकों को सब सुविधाएँ प्रदान करो," शिवाजी ने उत्तर दिया।

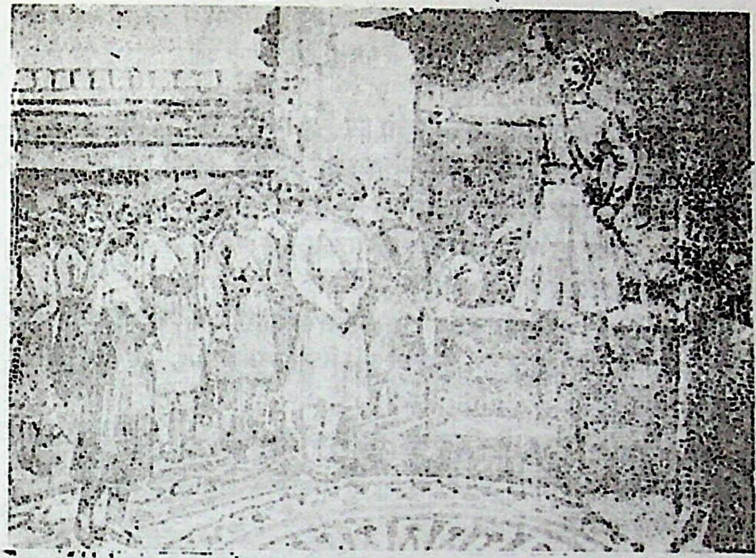
"महाराज! इस आक्रमण के दौरान एक बहुमूल्य वस्तु हमें और मिली है।" आबाजी ने प्रसन्न होकर कहा।

"ऐसी क्या बहुमूल्य वस्तु हाथ लग गयी! देखें तो बीजापुर वालों के पास कैसे-कैसे हीरे-जवाहरातों के तोहफे हैं," शिवाजी ने उत्सुकतावश पूछा।

तब तक आबाजी उछलकर सैनिकों के पीछे से बुर्कानशीन सुन्दरी को आगे ले आया और झुककर बोला, "महाराज, यह है वह बेशकीम···"

उसका वाक्य तो वाक्य, शब्द भी पूरा न हो पाया। शिवाजी क्रोधित हो आपे से बाहर हो गये। मंच से उठकर एक पैड़ी नीचे तक उतर आये और गरज उठे, "खामोश! बेशर्म आबाजी जी, खामोश! यह सब करने से पहले तेरे हाथ क्यों नहीं टूट गये, कहने से पहले जीभ कटकर क्यों न गिर पड़ी।"

"तूने हमारे सब किये-धरे पर पानी फेर दिया। हमें क्या पता था हमारे



स्वराज्य का कार्य करते समय ध्यान रखो कि हर परायी स्त्री हमारी माँ है

अपने ही लोग हमें नहीं समझ पायेंगे। तूने हमें गजनी और गौरी के वारिस बनाने की कोशिश की। हम लज्जित हैं, अपमानित हैं।"

"महाराज! क्षमा करें," आवाजी गिड़गिड़ाया।

कुछ देर महाराज मौन खड़े-खड़े गुस्से से काँपते रहे। फिर अपने को थोड़ा सँभालते हुए बोले, "आबाजी! इसमें क्षमा करने न करने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न हमारी मर्यादाओं का है, हमारे धार्मिक संस्कारों का है। आखिर हमने स्वराज्य की स्थापना का व्रत ही क्यों लिया है? क्या दूसरों की बहू-बेटियों की अस्मत लूटने के लिये? दूसरों के धर्मस्थान ध्वस्त करने के लिये? बच्चों और अबलाओं के खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाने के लिये? नहीं, कदापि नहीं। इस तरह तो हमारे में और इन क्रूर अत्याचारी बीजापुर वालों या मुगलों में कोई अन्तर ही न रहेगा। जनता हमारा पक्ष क्यों लेगी? क्यों हमारी विजय पर आनन्द मनायेगी?"

चारों तरफ खामोशी छायी थी। लोगों की निगाहें शिवाजी पर टिकी थीं और शिवाजी की आबाजी सोनदेव पर।

उन्होंने गम्भीर होकर कहा, "हम मुहम्मद बिन कासिम नहीं हैं, जो राजा दाहिर की सुकुमार कन्याओं को लूट का माल समझकर अपनी हविश मिटाने के लिये इस्तेमाल करे। हम हिन्दू हैं इसी कारण हमारी नजर में जानी से जानी दुश्मन की बहू-बेटी भी हमारी अपनी माँ-बेटी है। हाँ माँ-बेटी है, धर्मपुत्री है।"

महिला ने बुर्का मुँह से हटा दिया। उसने किस्से-कहानियों में देवदूतों की बात सुनी थी। आज देवदूत सामने खड़ा था। भला कैसे उसके दर्शन करने का मोह संवरण करे।

अपने सैनिकों को सम्बोधित करते हुए शिवाजी ने कहा, "आप सब भी कान खोलकर सुन लो। स्वराज्य का कार्य करते समय हर परायी स्त्री हमारी माँ है, हमारी बहन है। उनकी तरफ कोई टेढ़ी नजर देखने की गुस्ताखी न करे।"

फिर मुल्ला मुहम्मद से बोले, "सूबेदार! आबाजी की तरफ से हम तुम से क्षमा माँगते हैं। महिला आपकी क्या लगती है?"

"महाराज! मुझे शर्मिन्दा न करें। आज मेरी समझ में आया कि आपमें और हममें क्या फर्क है। ये हमारे शहजादे की बेगम साहिबा हैं," मुल्ला मुहम्मद ने उत्तर दिया।

"बहन! हम आपसे किस मुँह से माफी माँगें। आप बन्दी नहीं, हमारी प्रतिष्ठित मेहमान हैं। आप अपने सैनिकों के साथ जाने के लिये स्वतन्त्र हैं," शिवाजी ने महिला से कहा।

"किन लफ्जों में आपका शुक्रिया अदा करूँ, ऐ मेरे रहनुमा! माफी माँगकर मुझे गैरत में न डालिये। आप जैसे फरिश्तों की कामयाबी में ही कौम और मुल्क की बेहबूदी छिपी है," कहते हुए उस सुन्दरी ने झुककर सलाम किया और पुनः बुर्का मुँह पर ओढ़ लिया।

१०

सफल चाल

थोड़े ही समय में शिवाजी की सफलताओं की दुंदुभि सर्वदूर सुनायी पड़ने लगी। दुर्ग के बाद दुर्ग उनके अधिकार में आते चले गये। आदिलशाही एक झटके से सम्भलने भी न पाती थी कि उसके सीने में अचानक एक घूंसा और आ जमता था। वीजापुर दरवार लगता, गम्भीर चर्चाएँ होतीं, शिवाजी द्वारा फैलायी जा रही विद्रोह की लपटों के समाचारों पर चिन्ता व्यक्त की जाती। परन्तु कोई उपाय न सूझ पाता। प्रायः हर मोर्चे पर शिवाजी ने वीजापुर को करारी मात दी थी। वीजापुर के अच्छे-अच्छे सरदार शिवाजी के नाम से ही डरते थे। इसलिये दरवार की चर्चाओं में ज्यादातर समय एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने में वीत जाता। किसी में यह हिम्मत न होती कि आगे बढ़कर शिवाजी से निपटने के लिये अपना नाम प्रस्तुत करे।

तभी शिवाजी को भी एक ऐसी क्षति उठानी पड़ी जिसकी पूर्ति होनी असम्भव थी। उनके गुरु दादा कोण्डदेव वृद्धावस्था होने के कारण एक बार बीमार क्या हुए, फिर उठ नहीं पाये। हालत दिनोंदिन गम्भीर होती चली गयी और अन्तिम समय निकट दिखाई देने लगा। उन्होंने सूनी आँखों से आकाश की ओर दृष्टिपात किया फिर धीरे से बोले—"शिवाजी राजे! यह शरीर अब पाँच तत्त्वों में विलीन होने को आतुर है। हमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि आप माताजी के मार्ग-दर्शन में अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे।"

अश्रुपूरित नेत्रों से शिवाजी वोले—"पन्त! आपने हमसे स्वराज्य-प्राप्ति तक हमारा मार्ग-दर्शन करने का वचन दिया था। अभी तो हमने नौका खेनी प्रारम्भ ही की है कि आप हमें छोड़कर जाने लगे। संकट की घड़ी में हम किसकी ओर सलाह के लिये निहारेंगे? अपने बाल राजे को आप यूँ ही छोड़कर चले जायेंगे?"

दादा कोण्डदेव की आँखें भी नम हो आयीं। काफी देर तक शिवाजी की आँखों में झाँकते रहे और फिर बोलने का प्रयत्न किया, "वास्तव में हमें मरते समय यह वेदना शूल की तरह भेद रही है कि हम स्वराज्य की पूर्ण कल्पना साकार होने तक अपना योग नहीं दे पायेंगे। परन्तु ईश्वर की इच्छा के सामने बाल राजे! किसी की नहीं चलती। तो भी हम इस विश्वास के साथ यहाँ से जा रहे हैं कि अब वह

समय अधिक दूर नहीं है जब सदियों की दासता की बेड़ियाँ खनखनाकर टूटेंगी, और हमारे बाल राजे के हाथों टूटेंगी।"

बहुत देर तक दोनों एक दूसरे को देखते रहे। आँखों में अश्रु उमड़ते-घुमड़ते रहे। दोनों ही कुछ न बोल पाये। अन्त में दादा कोण्डदेव ने ही बोलने का थोड़ा प्रयास किया। केवल इतना ही कह पाये थे—"बाल राजे! हमारी मृत्यु के बाद आप सिंहगढ़ का ध्यान रखना। अब तक तो हमको ही बीजापुर ने वहाँ का सूबेदार बना रखा था, परन्तु हमारे बाद वे चाल चलेंगे। राजे! हमें क्षमा करना, हम स्वराज्य-प्राप्ति तक आपका सहयोग नहीं…" कि उनकी जीभ लड़खड़ा गयी और वे सदा के लिये चिरनिद्रा में निमग्न हो गये। १९ जुलाई, १६४७ को जब दादा कोण्डदेव का नश्वर शरीर चिता पर रखकर लपटों की भेंट किया जा रहा था तो शिवाजी अपलक अनन्त आकाश की ओर देख रहे थे।

एक और दधीचि राष्ट्र को समर्पित हो गया।

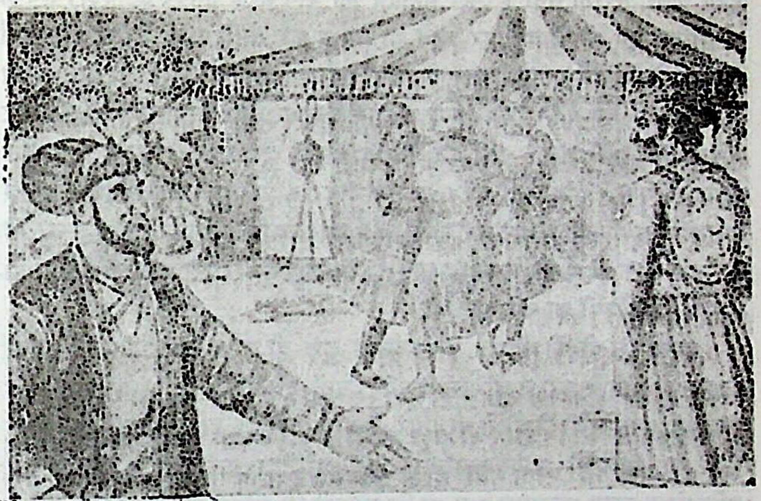
शिवाजी पर अब राज्य शासन का भी बोझा आ पड़ा। परन्तु आवश्यकता में से ही एक श्रेष्ठ व्यवस्था खड़ी हो गयी। श्याम राजपन्त पेशवा, पन्तजी और सोनोपन्त जैसे अनुभवी राजनेताओं की एक मण्डली उन्होंने राज्यकार्य चलाने के लिये नियुक्त की। युद्धकार्य के लिये तो बाजी पासलकर, नेताजी, येसाजी और तानाजी जैसे श्रेष्ठ योद्धा उनके पास थे ही। इन्हीं योद्धाओं के बलबूते पर उन्होंने अपने विजय-अभियान फिर प्रारम्भ कर दिये।

सिंहगढ़ के सूबेदार इन दादाजी कोण्डदेव की मृत्यु हो जाने के कारण बीजापुर दरबार द्वारा शिरवाल के रहीम मुहम्मद को वहाँ का सूबेदार बनाया गया।

यह एक अवसर था और शिवाजी ने जीवनभर कोई अवसर अपने हाथ से नहीं जाने दिया। तूफानी गति से सिंहगढ़ और सुभान-मंगल दुर्ग उन्होंने अपने अधिकार में ले लिये। किन्तु शिवाजी अभी बीजापुर से किसी सीधे संघर्ष में नहीं उलझना चाहते थे। अपनी सब विजयों के बावजूद भी वे भलीभाँति जानते थे कि अभी उनका बल बीजापुर की तुलना में नगण्य है। अतः उन्होंने बीजापुर सुल्तान को लिख भेजा—"सुल्तान इस बात से आश्वस्त रहे कि हम उनके अधीन ही एक जागीरदार हैं। जिन किलों पर हमने अधिकार भी किया है, वह श्रीमान को चुनौती देने के लिये नहीं, अपितु कुशल प्रशासन को दृष्टि में रखकर किया है। आपकी अवज्ञा करने का हमारा रंचमात्र भी विचार नहीं है।"

इस पत्र को लेकर बीजापुर में बड़ी देर तक चर्चा हुई। कोई कहता था यह धोखा है। कोई कहता था इसमें सच्चाई है। कुछ ने यह भी सुझाव दिया कि यदि शिवाजी सुल्तान के अधीन जागीरदार बने रहने को तैयार है, तो नाहक उससे बिगाड़ना नहीं चाहिए। वह मुगलों के खिलाफ सेनापति सिद्ध हो सकता है।

बीजापुर कुछ दिन को शान्त हो गया। शिवाजी ने छेड़खानी बन्द सी रखी।



शाहजी को धोखे से गिरफ्तार कर अफजलखाँ बीजापुर ले आया

परन्तु शीघ्र ही बीजापुर में हो रही तैयारियों के विषय में शिवाजी को सूचनाएं मिलने लगीं। सुलतान धोखे से हमले की योजना बना चुका था और उसका फतेहखाँ नाम का सरदार एक विशाल सेना लेकर स्वराज्य की ओर प्रस्थान कर चुका था। मताजी धाटगे, बालाजी हैवतराव, मूसेखाँ, मिनादशाह और अशरफशाह जैसे प्रसिद्ध लड़ाके भी उसके साथ थे।

शिवाजी राजगढ़ पर थे। काफी सोच-विचार के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि बीजापुर की सेनाओं का मुकाबला पुरन्दर दुर्ग से किया जाय। अतः अपने साथ बाजी पासलकर, बाजी जेधे और बालाजी नायक को लेकर उन्होंने पुरन्दर की ओर कूच किया।

उसी समय फतेहखाँ ने अपनी सेना के एक भाग को बालाजी हैवतराव के नेतृत्व में शिरवाल की तरफ भेजा और शिरवाल तथा सुभानमंगल दुर्गों पर हैवतराव का अधिकार हो गया।

इसके प्रतिकार के लिये शिवाजी ने अपने सरदार कावजी को भेजा। भयंकर युद्ध हुआ। दुर्ग पुनः कब्जे में आ गये। आदिलशाही सेना भागने को मजबूर हुई, परन्तु शिवाजी के विश्वस्त वीर बालाजी के बलिदान के बाद ही।

शिरवाल की पराजय ने जहाँ फतेहखाँ को आगबबूला कर दिया वहीं बालाजी की मृत्यु से शिवाजी भी क्रोधित हो उठे।

ज्योंही फतेहखाँ ने अपनी सेनाओं को पुरन्दर के किले पर हमला करने का

हुक्म दिया, मराठा सेना 'हर-हर महादेव' का घोष करके उनपर टूट पड़ी। शत्रु के जो सैनिक दुर्ग की दीवारों पर चढ़ने का प्रयास कर रहे थे, उन्हें मराठों ने पत्थरों और तीरों से मार-मारकर मृत्यु के घाट पहुँचा दिया। फतेहखाँ की सेनाओं को जान के लाले पड़ गये। स्वयं फतेहखाँ जान बचाकर ऐसा भागा कि पीछे की ओर मुड़कर भी नहीं देखा। इसी युद्ध में शिवाजी का दूसरा साथी बाजी पासलकर शहीद हो गया। ८ अगस्त, १६४७ को बीजापुर की यह पराजय जहाँ शिवाजी की सेनाओं में नया रक्त संचार कर गयी, वहीं आदिलशाही की रही सही हिम्मत भी टूट गयी। एक ही झटके में दो विजय—शिरवाल पर और पुरन्दर पर। लेकिन दो अमूल्य सहयोगियों का बलिदान भी।

परन्तु इस दोहरी विजय का उल्लास कुछ ही समय बाद शाहजी के बन्दी अवस्था में होने के कारण धूमिल हो गया। उन्हें १० मार्च, १६४८ को जंजीरों से जकड़कर अफजलखाँ जिंजी से बीजापुर ले आया था (८६ हाथियों पर जिंजी किले से लूट का माल भी लाया गया था) फतेहखाँ तथा फरीदखाँ की पराजय से आदिलशाह इतना झल्लाया हुआ था कि शाहजी का जीवन ही खतरे में पड़ गया।

बेड़ी में बँधे शाहजी का चित्र हर समय शिवाजी के मानस चक्षुओं के सम्मुख घूमता रहता। उन्हें मुक्त करने के लिये क्या उपाय बरता जाय?

क्या बीजापुर पर ही धावा बोल दिया जाय? परन्तु वह मूर्खता होगी। तभी एक विचार शिवाजी के मन में आया। कुछ ही दिन बाद एक विशेष सन्देशवाहक शाहजहाँ के दरबार में भेजा गया—"हम और हमारे पिता शाहजी दिल्ली सम्राट् की इच्छानुसार उनकी सेवा करना चाहते हैं। कृपया हमारी नियुक्ति का एक पत्र भेजें। इसमें एक ही बाधा है—हमारे पूज्य पिता को बीजापुर के शाह ने धोखे से गिरफ्तार कर लिया है। यदि उनकी मुक्ति की व्यवस्था की जा सके, तो आपकी सेवा करने में हमें अतीव हर्ष होगा।"

शाहजहाँ की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं था कि शाहजी और शिवाजी जैसे अनुभवी और सिद्ध योद्धा दिल्ली के शाही दरबार के लिये बहुमूल्य सिद्ध होंगे।

कुछ ही दिन बाद बीजापुर दरबार में दिल्ली दरबार से एक अनपेक्षित पत्र आया—"शाहजी को तुरन्त मुक्त किया जाय। अब वे दिल्ली दरबार के एक सम्मानित दरबारी हैं।" साथ में शाहजी महाराज के सम्मान के उपलक्ष में एक पोशाक भी भेजी गयी थी।

आदिलशाह क्रोध से बिलबिला उठा परन्तु दिल्ली दरबार की अवज्ञा करने की उसमें हिम्मत नहीं थी। १६ मई, १६४९ को शाहजी को मुक्त ही नहीं किया गया अपितु उनकी जागीरें भी उन्हें लौटा दी गई।

एक भी गोला दागे बिना शिवाजी अपने पिता को मुक्त कराने में सफल हुए।

११

एक बुत-शिकन

बीजापुर अशान्त था। दिन का चैन और रात की नींद गायब हो गयी थी। शिवाजी के सम्बन्ध में प्रतिदिन कोई न कोई समाचार आता और आदिलशाही के दिल पर हथौड़ा-सा जा लगता। क्या करें, उससे कैसे निपटें —जैसे प्रश्न मुँह बाये खड़े रहते परन्तु कोई उपाय समझ में न आता।

सुलतान अली आदिलशाह की माँ बड़ी साहिबा बहुत तेज, तर्रार और क्रूर हृदय औरत थी। बीजापुर का प्रशासन उसी के संरक्षण में चल रहा था। क्या मजाल कोई चिड़िया भी उसकी इच्छा के विपरीत अपने पर फड़फड़ा जाये! बहलोलखाँ की वफादारी में उसे किसी प्रकार सन्देह हो गया तो फौरन उसका सिर धड़ से अलग करा दिया। स्त्रियोचित ममता और दया उसे छू भी नहीं गयी थी।

मुगलों और बीजापुर वालों की खटपट तो रहती ही थी। प्रायः मुठभेड़ हो जाती थीं। ऐसी ही एक मुठभेड़ तब हुई थी जब औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था। बीजापुर की ओर से खान मुहम्मद सिपहसालार था। उसने औरंगजेब को अपने जाल में फँसा भी लिया था परन्तु वह किसी तरह निकल भागा। बस अब क्या था! बड़ी साहिबा गुस्से से आग बरसाने लगी। भरे दरबार में खान मुहम्मद के टुकड़े-टुकड़े करा दिये और किसी ने भी मुँह से उफ तक नहीं निकाली।

आज वही बड़ी साहिबा महल की छत पर बेचैन चक्कर काटती है, बड़बड़ाती है और गुस्से से दाँत कटकटाकर रह जाती है। शिवाजी ने उसकी नाक में दम कर रखा है। उसकी हिम्मत जरूरत से ज्यादा बढ़ गयी है और यहाँ कोई हिम्मत ही नहीं करता कि उससे दो-दो हाथ कर ले।

शिवाजी से निपटने के उपाय सोचने के लिये सदा की तरह उस दिन भी बीजापुर दरबार लगा था। ज्योंही अली आदिलशाह ने दरबार में प्रवेश किया सारा दरबार खड़ा हो गया। सरदारों ने भली-भाँति अपना स्थान ग्रहण भी नहीं किया था कि तभी पर्दानशीन बड़ी साहिबा आ पधारी और सुलतान के सिंहासन

के निकट ही बनी शानदार झरोखेदार गद्दी पर विराजमान हो गयी। दरबारियों को अपनी आँखों पर यकीन न हुआ। हड़बड़ाकर खड़े हुए और दमघुटे से खड़े के खड़े रह गये। सबकी सिट्टी गुम हो गयी।

सुलतान ने बात शुरू की—"फिर वही मसला हमारे सामने है। इस शिवाजी के बच्चे से कैसे निपटें? हमने उसके बाप शाहजी को खत लिखा था उसका जवाब आ गया है और उससे भी हमारा कोई काम नहीं बनता है। शाहजी ने लिखा है कि उसका बेटा उससे बागी हो गया है। उसकी कोई इज्जत नहीं करता और न ही उसका कहना मानता है। शाहजी ने उस बागी से निपटने की हमें पूरी छूट दे दी है। अब सवाल फिर वही है कि क्या करें।"

एक के बाद एक सरदार सुझाव देने खड़ा होता रहा। गर्मागर्म भाषण हुए और न जाने यह क्रम कब तक चलता कि अचानक बिजली कौंधी।

हाँ बड़ी साहिबा गरज उठी थी—"बस बस, ये बकवास बन्द करो। बहुत हो चुका। तुम सब कागजी शेर बने दरबार में दहाड़ते हो और मतलब की एक बात नहीं करते। सीधे-सीधे यह बताओ तुममें से कौन है जो शिवाजी के बच्चे को जिन्दा पकड़कर यहाँ दरबार में पेश कर सकता है? जिसमें हिम्मत हो वह आगे आये और..."

इसी बीच एक दासी सोने का एक सजा थाल जिसमें चाँदी का वर्क लगा पान का बीड़ा रखा था, चौकी पर रखकर चली गयी।

जैसे सबको लकवा मार गया हो। एक-दूसरे की तरफ देखने लगे फिर नीची गर्दन कर खड़े रहे।

बड़ी साहिबा ने एक तरफ से नजर घुमायी और सबको घूरती चली गयी। बीजापुर दरबार के सभी शेर तो वहाँ मुँह लटकाये खड़े थे; अफजलखाँ, मूसेखाँ, हसन पठान, हिलाल, घोरपड़े, घाटगे, मम्बाजी भोंसले आदि सब मौजूद थे।

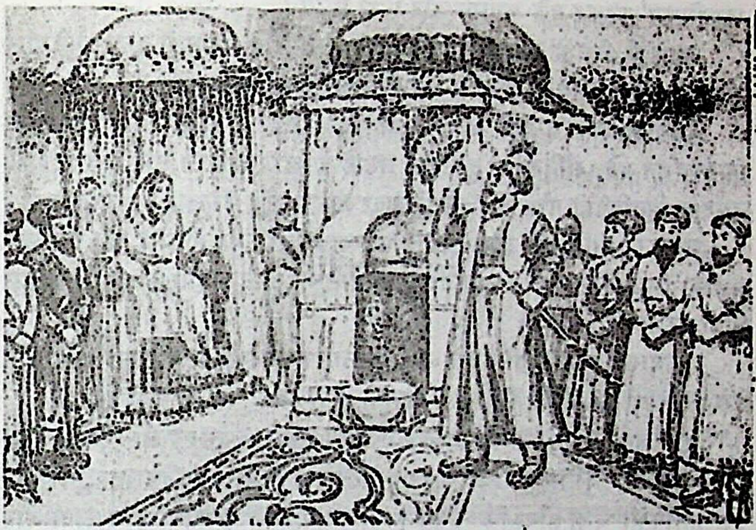
बड़ी साहिबा नागिन-सी फुफकार उठी—"तुम सब हिजड़े इकट्ठे हो गये हो। कोई भी मर्द यहाँ बाकी नहीं है। क्यों खड़े हो यहाँ? जाओ अभी एकदम यहाँ से..."

"मैं खुद को इस काम के लिए पेश करता हूँ, बड़ी साहिबा!"

सारे दरबार में एक सनसनाहट-सी दौड़ गयी। मानो मुर्दों का ढेर जिन्दा हो उठा हो।

बड़ी साहिबा की नजर उधर को मुड़ गयी जिधर से आवाज आयी थी। अफजलखाँ अन्य सरदारों की पंक्ति से निकलकर दो कदम आगे आ पहुँचा और पान का बीड़ा उठाकर उसने चबा लिया।

अपना हाथ ऊँचा उठाकर उसने बड़े घमण्ड से घोषणा की—"बड़ी साहिबा! मैं उस चूहे को जिन्दा पकड़कर आपके सामने पेश करने की कसम खाता हूँ।"



बड़ी साहिबा ! मैं उस चूहे को जिन्दा पकड़कर आपके सामने पेश करने की कसम खाता हूँ

अली आदिलशाह के चेहरे पर खुशी दौड़ गयी परन्तु बड़ी साहिबा पहले की तरह ही गम्भीर होकर बोली—"हम तुम्हारी बहादुरी के कायल हैं खान ! लेकिन शिवाजी बड़ा मक्कार है। उससे निपटने के लिये फौजी ताकत के साथ-साथ चालाकी के दाँव-पेंच भी लड़ाने पड़ेंगे।"

"बड़ी साहिबा ! मैं कोई आटे का नहीं बना हूँ। सैकड़ों लड़ाइयाँ मेरी हिम्मत की जिन्दा मिसालें हैं। आप बेफिक्र रहें। और उस दिन की बाट देखें जब मैं उस काफिर के हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डालकर इस दरबार के सामने पेश करूँगा।"

"हमें तुम्हारी बातों पर पूरा-पूरा यकीन है। आखिर जब तुम उसके बाप को मुश्क लगाकर दरबार में ला सकते हो, तो उसके बेटे की नाक में भी नकेल डाल सकते हो। हम खुदा से तुम्हारी कामयाबी की दुआ माँगते हैं," कहती हुई बड़ी साहिबा खड़ी हुई और शाही अंदाज से जनानखाने की तरफ चली गयी।

अली आदिलशाह ने उठकर हीरों की मूठ वाली एक छुरी उसे देते हुए कहा, "खान ! यह आपको हमारी तरफ से तोहफा है। हमें उम्मीद है आप आदिलशाही के इस काँटे को हमेशा के लिये निकाल फेंकेंगे।"

सारा दरबार अफजलखाँ की जयकारों से गूँज उठा। किसी ने उसे शेर कह-कर पुकारा तो किसी ने कुछ और।

दरबार उठने से पूर्व खुद अली आदिलशाह ने उसे 'महान बुतशिकन' और

'कुफ्रशिकन' कहकर गले लगाया और विदा किया।

अगले ही दिन से नगर के बाहर मीलों लम्बे-चौड़े मैदान में तम्बू लगने शुरू हो गये। अलग-अलग दिशाओं से सेनाएँ आकर इकट्ठी होना शुरू हुईं।

देखते-ही-देखते तम्बुओं और शामियानों का नगर खड़ा हो गया। लड़ाई के बिगुल बजने लगे। सैनिकों की टुकड़ियाँ लड़ाई का अभ्यास करने लगीं। जिधर देखो उधर ही हिनहिनाते घोड़े दौड़ लगाते नजर आते या सूँड़ उठाकर चिंघाड़ते हाथी।

आखिर ज्योतिषियों द्वारा बताये गये 'शुभ दिन' यह सेनाओं का काफिला कूच के लिये तैयार हुआ। सब सरदार अपनी-अपनी टुकड़ियों के आगे सजे हुए घोड़ों पर सवार हो गये।

अफजलखाँ का हाथी सबसे आगे चलना था। कई दिन से उसके माथे और सूँड़ पर मेंहदी रचाई जा रही थी। कीमती हौदा तैयार कराया गया था।

खान अपने शामियाने से निकलकर बाहर आया। असंख्य सैनिकों को देख-कर वह फूलकर कुप्पा हुआ जा रहा था। सैनिकों के बीच से निकलता हुआ कोई एक फर्लांग ही चला होगा कि उसके हाथी का महावत घबराया हुआ आया और माथे से पसीना पोंछते हुए बोला, "सरकार! न जाने कौन बला जादू कर गयी। आपका प्यारा हाथी 'फतेह लश्कर' खड़ा-खड़ा धड़ाम से जमीन पर जा गिरा और देखते ही देखते दम तोड़ गया।" खान दोनों हाथ आसमान की तरफ किये खड़ा रह गया। वह इस अशुभ लक्षण के लिये बिल्कुल तैयार नहीं था।

उसने किसी तरह अपने को सँभाला। आखिर तो वह सेना का सिपहसालार था! बाकी सरदार और सिपाही क्या कहेंगे!!

यही सोचकर उसने हुक्म दिया—"तो फिर नालायक हमारा मुँह क्या ताक रहा है। जाओ कोई दूसरा हाथी तैयार करो और जल्दी लेकर आओ।"

एक बार जोर से नारा लगा 'अल्लाह हो अकबर'।

दूसरा नारा लगा, 'कुफ्र शिकन अफजलखान जिन्दाबाद।'

तीसरी बार नारा और जोर से लगा, 'बुतशिकन अफजलखाँ जिन्दाबाद।'

मानो समुद्र की तूफानी लहरें आगे ही आगे बढ़ चलीं।

सारा आकाश धूल से आच्छादित हो गया और अगला पड़ाव आते ही धरती खून से लाल होनी शुरू हो गयी। जिस भी गाँव के बाहर डेरे डाले जाते, वहीं खान मृत्यु का नग्न नर्तन कराता।

मन्दिरों के कलश उठवाकर नदियों में फिंकवाये जाने लगे, मूर्तियाँ तोड़-तोड़-कर मस्जिदों की पैड़ियों की नीवों में झोंक दी गयीं। यह क्रम अनवरत चलता रहा और अफजलखाँ का काफिला भी आगे ही आगे बढ़ता रहा। धीरे-धीरे पाप का यह घड़ा भी भरता गया। परन्तु इस घड़े को पूरी तरह भरने में शायद अभी थोड़ी देर और लगनी थी। ठीक उतनी ही देर इसके फूटने में भी थी।

१२
धीरज धर्म

शिवाजी के गुप्तचरों ने बीजापुर दरबार में अफजलखाँ द्वारा की गयी प्रतिज्ञा का समाचार उन्हें पहुँचा दिया। राजगढ़ दुर्ग में शिवाजी ने अपने अन्तरंग साथियों के साथ बैठकर अफजलखाँ से निपटने के सम्बन्ध में नीति निर्धारित की।

बीजापुर से अफजलखाँ विशाल सेना लेकर निकला और मार्ग में आने वाले ग्रामों, नगरों में अपनी विनाशलीला करता बढ़ा चला आ रहा था। जब उसकी सेनाएँ कूच करतीं, तो भूचाल-सा आ जाता। दुर्बलचित्त लोग घबरा जाते और प्राणों की भीख माँगने लगते। स्वराज्य के भी कई समर्थक उससे जा मिले।

अफजलखाँ की नीति किसी तरह शिवाजी को मैदानी इलाकों में खींच लाने की थी जिससे मराठा सेना को आसानी से पराजित किया जा सके। इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिये उसने भिन्न-भिन्न प्रकार से शिवाजी को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया।

सबसे पहले उसने तुलजापुर को अपना निशाना बनाया। वहाँ शिवाजी की कुल-आराध्या तुलज़ाभवानी का प्रसिद्ध मन्दिर था जहाँ दूर-दूर से प्रतिवर्ष असंख्य हिन्दू देवी-दर्शनों के लिये जाते थे। खान ने स्वयं लोहे के हथौड़े से मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर पैरों तले रौंदा और मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। जब इससे भी उसकी तृप्ति न हुई तो कई गायों को लाकर मन्दिर की वेदी पर काटा गया और धर्मान्ध मुसलमान सैनिकों में गौ-मांस वितरित किया गया।

जब राजगढ़ यह समाचार पहुँचा तो मराठा और आग-बबूला हो उठे। उन्होंने शिवाजी से कहा—"महाराज ! अब हमसे सहन नहीं होता। आप आज्ञा दीजिए। हम इस खान के बच्चे की बोटी-बोटी काटकर कुत्तों को डाल देंगे।"

शिवाजी की आँखों में भी खून बरस आया फिर भी वे धैर्यभाव से बोले—"अभी समय नहीं आया है।"

तुलजापुर से निकलकर अफजलखाँ पण्ढरपुर पहुँचा। इसे दक्षिण की काशी कहा जाता है। खान ने वहाँ विट्ठल मन्दिर की ईंट से ईंट बजा दी। जिस किसी

ने प्रतिरोध करना चाहा, उसकी उँगलियाँ काट डालीं या फिर गर्दन ही उड़ा दी।

हाहाकार करते लोग महाराज के पास पहुँचे। उन्हें भी उन्होंने शान्त रहने की सलाह दी और समय आने पर उपाय करने का आश्वासन दिया।

अब तक खान मलवण्डी गाँव जा पहुँचा था। शिवाजी को राजगढ़ से नीचे उतारने के लिये उसने एक अचूक निशाना साधा। शिवाजी के साले बजाजी निम्बालकर को मुश्क बाँधकर छावनी में लाया गया, जहाँ उसका भिन्न-भिन्न तरीकों से अपमान किया गया।

राजगढ़ में शिवाजी की बीमार पत्नी सईबाई ने उनकी ओर याचनाभरी दृष्टि से देखा और कहा—"आप अब भी क्या इसी तरह शान्त बने रहेंगे और सब कुछ सहन करते रहेंगे?"

शिवाजी ने उन्हें भी सान्त्वना दी और उपयुक्त समय आने पर सब अपमानों का बदला लेने का वचन दिया।

शिवाजी के दुर्ग में अफ़जलखाँ के अत्याचारपूर्ण कारनामों को सुन-सुनकर रोष फैलता जा रहा था। कई सरदार अब और अधिक प्रतीक्षा के पक्ष में नहीं थे। बहुत से अत्यधिक उत्तेजित हो उठे थे। शिवाजी ने एक शाम सबको बुलाया और सम्पूर्ण परिस्थिति का मूल्यांकन करने के लिये विचार-विमर्श आरम्भ किया।

शिवाजी ने उन सबको निःसंकोच अपने विचार प्रकट करने दिये।

अपने साथियों का आक्रोश देखकर शिवाजी को बुरा नहीं लगा। उनकी बातें ठीक ही थीं। धर्म का अपमान और धन-जन की इतनी हानि कभी नहीं हुई थी। वे चाहते थे शिवाजी को तत्काल उससे दो-दो हाथ करने के लिये राजगढ़ से चल देना चाहिए।

अब शिवाजी के बोलने की बारी थी। और गम्भीर स्वर में उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—"आप सबकी भावनाओं का मैं बड़ा आदर करता हूँ। आपने जो कुछ भी कहा उसमें स्वराज्य हित निहित है, आपकी ही भाँति मैं भी खान के अत्याचारों से दुखी और क्रोधित हूँ। कभी-कभी अकेले में मैं भी आपे से बाहर हो जाता हूँ और तुरन्त उस पर आक्रमण की सोचता हूँ। परन्तु पुनः मुझे अपनी पूर्व निर्धारित योजना का ध्यान आता है। वर्तमान की वास्तविकताओं पर विचार करता हूँ तो भी वही योजना उचित और लाभकारी लगती है।

"आप सब यह भली-भाँति समझ लें कि खान का उद्देश्य है हमें मैदानी इलाके में उतार लेना। और हमारा लक्ष्य है उसे पहाड़ी क्षेत्र तक घसीटकर ले आना। उसकी करतूतों पर क्रोधित हो, अपना विवेक खोना क्या उचित है? अब अधिक देर नहीं है। वह हमारी माँद की तरफ बढ़ता आ रहा है। यह हमारे नीति-युद्ध की सफलता का परिचायक है। एक बार हमारी व्यूह-रचना में फँसा नहीं कि फिर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाने के बाद भी वह बचकर नहीं जा सकेगा। बस दो कदम

और आगे कि जावली के भयानक वनों के बीच वह आ फँसेगा। यहीं हम उसका शिकार करेंगे। यही वह क्षेत्र है जहाँ हमारी विजय और उसकी पूर्ण पराजय निश्चित है। आप अधीर न हों। थोड़े दिन और प्रतीक्षा करें। फिर देखना उसकी कैसे दुर्गति करेंगे!"

"अब हमारी अगली व्यूह-रचना का केन्द्र प्रतापगढ़ होगा।"

सब मौन हो गये। आगे कोई नहीं बोला। सबकी शंकाओं के उत्तर मिल गये। सबको एक नयी आशा ने अपने बाहुपाशों में बाँध लिया।

शिवाजी राजगढ़ छोड़कर प्रतापगढ़ की ओर प्रस्थान कर गये।

उधर अफ़जलखाँ और आगे बढ़ा तथा वाई तक आ पहुँचा और डेरे डालकर जम गया। वहीं से उसके सरदार अपनी टुकड़ियों के साथ निकलते और शिवाजी के क्षेत्र में लूटपाट करते, मार-काट मचाते और वापिस अपने डेरों में चले जाते।

अफ़जलखाँ के अत्याचार दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगे। किन्तु शिवाजी प्रतापगढ़ से हिले नहीं।

शिवाजी के गुप्तचरों ने अफ़वाहों का बाजार गर्म करना आरम्भ कर दिया।

'शिवाजी खान की सेनाओं से अत्यन्त भयभीत हैं।'

'डर के मारे वे दुर्ग से बाहर भी निकलने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं।'

अपने विजयोन्माद में अन्धा खान पहले ही बड़ा खुश था। इन खबरों को सुनकर तो फूला न समाया। घमण्ड में आकर बोला, "इस शिवाजी के बच्चे की मेरे सामने औकात ही क्या है! आ गयी न बच्चू की अकल ठिकाने। अकड़ा फिरता था। अब क्यों औरतों की तरह किले में छिपा बैठा है?"

इसी रौब में उसने शिवाजी को एक पत्र भी लिख भेजा। इसमें उसने उनसे अपने अपराध स्वीकार कर हथियार डालने का हुक्म दिया। साथ ही यह वायदा भी किया कि वह उन्हें बीजापुर सुलतान से क्षमादान दिलवायेगा। इसी पत्र में शिवाजी पर अनेक आरोप भी लगाये थे। राजपुरी, जावली, कल्याण, भिवण्डी आदि स्थानों पर अनधिकार कब्जा, राजाओं के चिह्न धारण करना, काजियों और मुल्लाओं को सताना आदि आरोप प्रमुख थे। उनके हितचिन्तक के नाते उन्हें बार-बार अपनी शरण में आने का निमंत्रण खान ने दिया।

शिवाजी ने उसके पत्र का भली-भाँति अध्ययन किया, विश्वस्त साथियों से सलाह-मशवरा किया और एक चतुर राजदूत के द्वारा अपना उत्तर लिख भेजा

पत्र में खान की अत्यधिक प्रशंसा की गयी। उसे एक पराक्रमी, श्रेष्ठ सरदार और गुणों का भण्डार कहा गया। शिवाजी ने उससे किसी प्रकार उनको बीजापुर से क्षमादान दिलाने की भी प्रार्थना की। भयभीत होने के कारण खान की शरण में पार तक पहुँचने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए, उसे जावली आने का निमंत्रण दिया, जिससे वहाँ वे उसके चरणों में गिरकर जीवनदान की प्रार्थना कर

सकें। अपने 'अपराधों' के लिये उससे क्षमा माँगी और भविष्य में अच्छे व्यवहार का वचन दिया।

खान पत्र को पाकर हर्ष से फूला न समाया। अपने साथियों को पत्र दिखाते हुए डींगें मारने लगा—"चला था सवराज बनाने! अच्छा हुआ जल्दी ही तुझे अपनी औकात मालूम हो गयी। अब मेरे सब वायदे पूरे होने में बहुत देर बाकी नहीं है। जावली तो जावली, तू कहे तो तेरे किले के भीतर भी आ जाऊँ। कायर कहीं का! तेरे से मिलने तो मैं दोजख तक में आने को तैयार हूँ।"

आखिर अफजलखाँ और शिवाजी की प्रत्यक्ष भेंट का प्रस्ताव दोनों ही पक्षों द्वारा स्वीकार कर लिया गया। प्रतापगढ़ के नीचे के मैदान में भेंट होनी निश्चित हुई।

अगले दिन अपनी सारी सेनाओं को उसने जावली की ओर प्रस्थान करने का हुक्म दे दिया। ऊँचे-नीचे पहाड़ी प्रदेश से होकर यह मस्त हाथी चला जा रहा था। चलता-चलता थक जाता, विश्राम कर लेता, फिर चल पड़ता। आखिर जावली पहुँचकर छावनी डाल दी गयी।

शिवाजी से अब नियमित रूप से पत्र-व्यवहार चलने लगा। शिवाजी का हर पत्र यही प्रभाव छोड़ जाता कि मराठे अत्यन्त भयभीत हैं। अफवाहें फैलायी गयीं सो अलग।

भेंट-स्थल का निर्णय शिवाजी ने स्वयं अपनी देखरेख में कराया और शामियाने भी अपने मनपसन्द लगवाये। प्रतापगढ़ दुर्ग के नीचे उत्तर-पूर्व में एक बड़ा मैदान साफ कराया गया। एक-एक व्यवस्था शिवाजी ने स्वयं देखी। सारा मैदान एक साफ स्वच्छ घर के आँगन की तरह लगने लगा। बीचों-बीच एक बड़ा कीमती शामियाना लगाया गया। हीरे-जवाहरातों की झालरें लटकायी गयीं और उसके अन्दर कीमती कालीन बिछाकर चन्दन की चौकियाँ सजायी गयीं जिन पर आराम-देह गद्दे और खूबसूरत तकिए रखे गये।

१० नवम्बर, १६५६! प्रतापगढ़ के प्रांगण में सन्नाटा-सा छाया हुआ था। शिवाजी के सरदारों के मन आशंकाओं से आच्छादित थे। सुबह की ठण्डी हवा में भी बेचैनी थी। प्रत्येक मराठा सैनिक की जबान पर एक ही वाक्य था—भगवान ही जाने आज क्या होगा!

बेचैन यदि कोई नहीं था, तो केवल शिवाजी। अंन्य लोग अफजलखाँ के कारनामों को सुन-सुनकर शिवाजी की सुरक्षा के बारे में आशंकित हो उठे थे। शिवाजी थे कि अत्यन्त शान्त। वे अद्‌भुत आत्मविश्वास के साथ खान से मिलने जाने को तैयार खड़े थे।

"क्यों कान्होजी! खान ने अपने डेरे 'पार' में डाले हैं न?" महाराज ने मौन भंग करते हुए पूछा।



अपने 'मेहमान' का 'सत्कार' करने शिवाजी पैदल ही सीढ़ी दर सीढ़ी उतरने लगे

"हाँ महाराज ! उसकी विशाल सेना ने अपनी छावनी वहीं डाली है और शायद…"

"और शायद भेंट के समय वे वहीं से अचानक हम पर टूट पड़ेंगे, यही न।" शिवाजी ने कान्होजी की बात पूरी की।

"हाँ, आप ठीक कहते हैं, महाराज ! परन्तु इस सम्बन्ध में तो हमने आपकी आज्ञानुसार पूर्ण प्रवन्ध कर लिया है," बाजी सर्जेराव ने अपने मन की बात कहने के उद्देश्य से बीच में टोका, "लेकिन हमारे गुप्तचरों की सूचना के अनुसार खान बड़ा मक्कार और धोखेवाज है। हम सब आपकी सुरक्षा के सम्बन्ध में बड़े चिन्तित हैं। उससे आपका मिलने जाना ही हमें खतरनाक लगता है, महाराज !"

शिवाजी ने अपने सरदारों की आँखों में आँखें डालकर पूछा, "क्या आपको मेरे से इतना व्यक्तिगत मोह हो गया है कि मेरी क्षमताओं में भी शंका होने लगी है ? इस समय इतना ही समझ लो कि यदि उसने थोड़ा भी छल करने का प्रयत्न किया तो मैं उसका कलेवा बनाकरही साँस लूँगा। अभी भी विश्वास नहीं आ रहा हो, तो आओ और मेरी उँगलियों को थोड़ा ध्यानपूर्वक देखो।"

सभी सरदार उनके विल्कुल निकट आ गये। महाराज ने अपना बायाँ हाथ आगे बढ़ाकर उँगलियाँ खोल दीं। सब सन्न रह गये। मुस्कान होंठों पर और हृदय में गुदगुदी।

वघनखा !

शिवाजी ने अपने वायें हाथ में चमकती हीरे जवाहरात की अंगूठियों के नीचे तेज बघनखा पहना हुआ था। उसी तरह मखमल के अंगरखे के नीचे अभेद्य कवच और वायें हाथ के बाजू में ही छिपायी थी पैनी कटार। वाहर से देखने पर लगता था बिल्कुल निरस्त्र हैं।

"अब तो आप आश्वस्त हैं मेरी सुरक्षा के सम्वन्ध में ?" शिवाजी ने उनसे पूछा।

"हाँ, महाराज," सभी एक स्वर से कह उठे।

भेंट का समय निकट आता जा रहा था। थोड़ी-सी देर मंत्रणा के बाद शिवाजी ने कुल-देवता का स्मरण किया और प्रतापगढ़ की सीढ़ियों पर आकर नीचे की ओर उतरने लगे। आँखों में निराली ही चमक थी और पैरों में असीम विश्वास।

उसी समय अफजलखाँ अपनी पालकी में वैठकर शामियाने की तरफ बढ़ा चला आ रहा था और शिवाजी थे कि अपने 'मेहमान' का 'सत्कार' करने पैदल ही सीढ़ी दर सीढ़ी उतरते चले जा रहे थे।

१३

बघनखा

दुर्ग के नीचे टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से होती शिवाजी की दृष्टि अब केवल शामियाने पर जाकर टिक गयी। कुछ ही क्षणों बाद खान से मुलाकात होगी। इतने रंगीन और शानदान शामियाने में मुलाकात भी कितनी शानदान ढंग से होगी।

सूरज की किरणों में शामियाना दमक रहा था। इससे भी अधिक दमक रहा था आत्मविश्वास भरा शिवाजी का चेहरा।

चलने से पूर्व उन्होंने निजी सुरक्षा की दृष्टि से तो पूरा प्रवन्ध कर ही लिया था, दुर्ग की रक्षा तथा प्रति-आक्रमण को ध्यान में रखकर भी उन्होंने अपने सरदारों को विस्तृत सूचनाएँ दी थीं। उन्होंने कहा था—कान्होजी नाईक और वाजी सर्जेराव अपनी टुकड़ियों के साथ दुर्ग के चारों तरफ इस तरह बिखर जायेंगे कि खान के सैनिक दुर्ग अथवा भेंट-स्थल की ओर बढ़ ही न सकें। नेताजी पालकर खान की छावनी के चारों तरफ मछियारे का जाल सा फैला देगा और दुर्ग से तोप दागने की आवाज सुनते ही आगे बढ़कर आक्रमण करना शुरू कर देगा।

अव सीढ़ियाँ उतरते समय शिवाजी जानते थे हर पेड़, झाड़ी, गुफा और खोखर में मराठे वीर छिपे बैठे हैं—वस संकेत हुआ नहीं कि खान के सैनिकों की खैर नहीं।

इधर अफजल खाँ की पालकी शामियाने के द्वार पर पहुँची तो उसने अपने दूत कृष्णाजी भास्कर से कड़ककर पूछा—"शिवा अभी तक नहीं आया? उसके आदमियों से कहो जल्दी करें।"

फिर उसने शामियाने की छत की ओर देखा। हीरे-जवाहरातों की झालरें लटक रही थीं। जमीन पर कालीन विछी थी तो वह भी हंस के पंखों सी कोमल। एक-एक चीज जगमगा रही थी। दाढ़ी पर हाथ फेरता खान बड़ी शान से मसनद पर जा बैठा और सोचने लगा—वस कुछ ही वक्त के बाद सब कुछ अपना होगा। गढ़ भी और ये हीरे-जवाहरात भी। नहीं होगा दुनिया में अगर तो वह बद्‌जात काफिर शिवाजी।

"हुजूर ! शिवाजी बहुत जल्दी ही यहाँ पहुँच रहा है। मैंने उसके दूत से कह दिया है कि खान साहब और ज्यादा देर बाट नहीं देख सकते," कृष्णाजी भास्कर ने आकर सूचना दी।

"ठीक है। आये तो हमें बता देना," खान ने कृष्णाजी को चलता किया और अपने बायें बाजू की बाँह का बटन खोलकर दायें हाथ से अपना दूसरा हाथ सहलाया तथा बटन फिर बन्द कर लिया। अंगरखे की बाँह के नीचे छिपी उसकी कटार ने बाजू में खुजलाहट पैदा कर ही दी।

तभी शामियाने के उत्तरी द्वार से तीस-चालीस कदम दूर तैनात उसके १० सैनिक तनकर खड़े हो गये। दक्षिणी द्वार से थोड़ी दूरी पर शिवाजी के भी १० सैनिक आ पहुँचे। शिवाजी शामियाने में प्रवेश कर रहे थे।

"आओ बेटा ! आओ ! डरो मत !" कहता हुआ अफ़जलखाँ शिवाजी से मिलने को आगे बढ़ा, "इस तरह कब तक भटकते रहोगे ? कोई बात नहीं। मैं तुम्हें बीजापुर दरबार में ले जाऊँगा और सुलतान से माफी दिलवाऊँगा। आओ ! मैं तुम्हें गले लगाने आया हूँ।"

"खान साहेब ! मैं जानता हूँ आप मुझे कितना प्यार करते हैं। मैं भी इसी-लिये आया हूँ," शिवाजी ने आगे बढ़ते हुए कहा, "मैं भी पहाड़ों में घूमते-घूमते तंग आ गया हूँ।"

दोनों एक दूसरे के आलिंगन में आ गये—विशालकाय खान और छोटे कद के शिवाजी ! धीरे से खान ने बायें हाथ से शिवाजी की गर्दन पर अपनी पकड़ कसी और दायें हाथ से उनकी बगल में कटार का वार किया।

पर वार व्यर्थ गया। शिवाजी के कवच पर टकराकर कटार नीचे को फिसल गयी। फिर त्वरित गति से उन्होंने अपनी गर्दन खान की जकड़ से छुड़ा ली और बायें हाथ का बघनखा उसके पेट में घुसेड़ दिया। जब तक वह जोर से चीखता उसकी आँतें बाहर निकल आयीं। खून का फव्वारा छूटने लगा और इसी बीच सिंह शावक की तरह उछलकर शिवाजी ने अपनी कटार उसके पेट में घोंप दी।

पेट पर हाथ रखे खान पुनः शिवाजी पर झपटा और साथ ही चीखा—"दगा ! दगा ! मारो ! पकड़ो !" और वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा।

पलक झपकते ही सैयद बन्दा नामक खान का चतुर तलवार चलाने वाला सैनिक शिवाजी के निकट पहुँच गया और बड़े तीव्र आवेग से उसका वार शिवाजी की गर्दन की तरफ बढ़ा। शिवाजी एकदम नीचे बैठकर बायीं ओर को खिसक गये। तभी उनके अंगरक्षक जीवामहाले ने बिजली की गति से अपनी तलवार के एक ही वार से सैयद बन्दे का हाथ कलाई से काट डाला। सैयद बन्दा की तलवार खनखनाती दूर फर्श पर जा पड़ी। बाहर खड़े खान के अन्य अंगरक्षकों को शिवाजी के दूसरे सैनिकों ने सम्भाल लिया!



खान पुनः शिवाजी पर झपटा और साथ ही चीखा--दगा ! दगा !! मारो ! पकड़ो !!

दौड़कर शिवाजी शामियाने से बाहर पहुँचे और तीन अंगरक्षकों के साथ तीव्रगति से दुर्ग की ओर जाने वाली पगडंडी पर बढ़ चले ।

इतनी देर में अफजल खाँ के कहार दौड़े-दौड़े शामियाने में पहुँचे और घायल खान को किसी प्रकार सहारा देकर पालकी में बैठाया। कहार पालकी उठाकर बाहर ही निकल पाये थे कि मराठा सैनिकों ने आगे बढ़कर उन पर आक्रमण कर दिया। एक ने तो पालकी में बैठे अफजल खान का सिर ही धड़ से काट डाला और कटे सिर को अपने भाले की नोक पर टाँगकर शिवाजी के पीछे-पीछे प्रताप-गढ़ दुर्ग की सीढ़ियों पर चढ़ता चला गया ।

महाराज के दुर्ग में पहुँचते ही मराठा सेना प्रसन्नता से नाच उठी। विजय सूचक तोप दागी गयी और नगाड़े बजने लगे ।

जगह-जगह छिपी मराठा सेना अफजलखाँ की छावनी पर टूट पड़ी। खान की सेना का मनोबल चकनाचूर हो गया। अफजलखाँ मारा गया। हम कहीं के न रहे। सुलतान को क्या मुँह दिखायेंगे ?" आदि वाक्य गुनगुनाते खान के सैनिक सिर पर पैर रखकर भागे ।

भागे और भागते चले गये। इतने भयभीत हुए कि पेड़ों के हिलते पत्ते भी उन्हें खूँखार बघनखे नजर आते थे ।

१४

गर्म लोहा

शिवाजी वापिस प्रतापगढ़ पहुँचे तो प्रसन्नता और खुशियाँ नाचने लगीं। तोपें दागी गयीं और नगाड़े बजने लगे। इस विजय का आनन्द कुछ और ही प्रकार का था। महाराज राक्षस का वध कर वापिस पहुँचे थे। अपूर्व उल्लास छाया था।

परन्तु शिवाजी एक क्षण को भी विश्राम करने को तैयार नहीं थे।

अफ़जल खाँ से भेंट से पूर्व ही उन्होंने अपने सेनापतियों को आगे की योजना क्रियान्वित करने का आदेश दे रखा था। तदनुसार प्रतापगढ़ दुर्ग से तोपों की आवाज होते ही विजय दुन्दुभि बज उठी और नेताजी पालकर अपने गुप्त स्थान से निकलकर हर-हर महादेव के युद्धनाद के साथ अफ़जल खाँ की छावनी पर टूट पड़ा। बीजापुर की सेना में हिम्मत कहाँ बची थी। जैसे-तैसे प्रतिकार करती यह सेना भागने लगी। परन्तु नेताजी पालकर ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। हजारों बीजापुरी सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये। नेताजी की न तलवार थकी और न ही घोड़ा कहीं रुका। वह मारकाट मचाता वाई पहुँचा। अफ़जलखाँ का लड़का फाजलखाँ अपना कुछ खजाना और पूरा जनानखाना लेकर भाग गया है, यह बात नेताजी पालकर को थोड़ी देर से पता लगी। बीच की मारकाट में ही नेताजी का काफी समय लग गया था। तो भी ज्यों ही खान के भागने की सूचना मिली तो उसने अपने सैनिकों के साथ तुरन्त फाजलखाँ का पीछा किया। परन्तु बहुत दूर तक जाने के बाद भी उसका पता नहीं लग पाया और नेताजी पालकर वाई की ओर लौट पड़ा!

इधर शिवाजी अपनी सेना के साथ रात्रि में वाई की ओर बढ़े। रास्ते में कहीं रुकावट नहीं, कहीं लड़ाई लड़ने की जरूरत नहीं। बीजापुर की सेनाएँ तो जान हथेली पर रखकर भागने में लगी थीं।

सुबह होते ही शिवाजी वाई नगर में स्वातन्त्र्य के साक्षात् प्रतीक बनकर उपस्थित हुए। कल तक तो वाई में अफ़जल खाँ का भयानक आतंक छाया था। आज सब तरफ खुशियों का साया था। लोग मुक्ति का अनुभव कर रहे थे। नगरवासियों ने पलक-पाँवड़े बिछाकर शिवाजी का स्वागत किया।

शिवाजी के आगमन के थोड़ी ही देर बाद नेताजी पालकर भी अपने सैनिकों सहित वाई वापिस आ पहुँचा।

मंत्रणा होने लगी। हीरोजी इंगेल की तरफ मुड़कर शिवाजी ने पूछा, "बीजापुर की सेनाओं का क्या हालचाल है ?"

"हालचाल तो आपने देखे ही हैं महाराज ! एकदम निराशा घर कर गयी है। किसी की हिम्मत ही नहीं है कि सामना करे। सुलतान बौखला रहा होगा। उसकी सेनाएँ अपनी सेनाओं का लोहा मान गयी हैं, महाराज !"

नेताजी पालकर ने अपना प्रस्ताव रखा—"यही तो मैं भी कह रहा था महाराज ! अभी लोहा गर्म है। अपना आतंक छाया हुआ है। इस गर्म लोहे पर जल्दी से जबरदस्त चोट करनी चाहिए।"

शिवाजी ने मुस्कराकर नेताजी की बात का अनुमोदन किया।

नेताजी पालकर को साथ ले शिवाजी तहलका मचाते हुए कोल्हापुर की तरफ बढ़ चले। यही अवसर था जबकि नेताजी के नेतृत्व में मराठों ने अधिक से अधिक किले अपने कब्जे में करने का प्रयत्न किया। और सुलतान के मनोबल को धराशायी कर डाला।

नेताजी पालकर की लपलपाती तलवार के सामने दुश्मन की सेना टिक न पाती। हजारों सैनिक मौत के घाट उतारे गये। नेताजी का घोड़ा जिधर मुड़ जाता उधर ही आततायी बीजापुर की शान मिट्टी के ढेले के समान चूर-चूर हो जाती।

आँधी की तरह बढ़ती जा रही मराठा सेना जिधर को निकलती, बीजापुर की सेनाएँ सिर पर पैर रखकर भागतीं। ऐसा आतंक और भय व्याप्त था कि कहीं भी मुकाबला नहीं हो रहा था। नगर के बाद नगर और दुर्ग के बाद दुर्ग पर शिवाजी का अधिकार होता चला गया। अफजलखाँ के वध को तेरह दिन भी पूरे नहीं हुए थे कि दिनांक २५ नवम्बर, १६५९ को मराठे कोल्हापुर पहुँच गये।

वहाँ के आदिलशाही सूबेदार ने अपनी जान बचाने के लिये कोल्हापुर से १० मील दूर स्थित पन्हालगढ़ दुर्ग पर शरण ली और सोचा कि वह वहाँ सुरक्षित रहेगा। परन्तु शिवाजी उसे कहाँ छोड़ने वाले थे।

अब उनका निशाना पन्हालगढ़ था। अर्थात् बीजापुर का बड़ा मजबूत दुर्ग। मराठा सेना ने दुर्ग को घेर लिया और तोपों की मार से बचते सैनिक दुर्ग की दीवारों को लाँघने लगे। बन्दरों की तरह उछलते सैनिक अन्दर कूदने लगे। शत्रु सेना ने भयानक हमला किया। अनेकों मराठा सैनिक घायल हुए और कितने ही खेत भी रहे। परन्तु अन्दर घुसने वालों का ताँता टूटा नहीं। थोड़ी ही देर बाद उन्होंने दुर्ग में घुसकर भयानक मारकाट करना प्रारम्भ कर दिया। चारों ओर कोहराम मच गया और वहाँ का मुस्लिम सरदार हथियार डालने को बाध्य हुआ।

नेताजी पालकर के हमलों से पहले ही सुलतान की नींद हराम हो रही थी। पन्हालगढ़ पर शिवाजी द्वारा अधिकार कर लेने के समाचार से तो उसका दम ही सूख गया। बीजापुर का दरबार लगा था। मूसेखाँ, फाजलखाँ, याकूखाँ जैसे उसके

सिद्ध सरदारों के भी चेहरों का रंग उड़ा हुआ था। सब गर्दन नीची किये बैठे थे।

सुलतान ने सिर खुजलाते हुए कहना शुरू किया—"क्या हम इसी तरह भेड़-बकरियों की तरह काटे जाते रहेंगे ? अफ़सोस है कि यह पहाड़ी चूहा हमारे घर में ही घुसकर हमारी मूँछों के बाल उखाड़ रहा है और हम हैं कि लाचार हैं।"

कोई उत्तर नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं।

"रूस्तमें जमां ! अब तो हमारी उम्मीदें तुम्हीं पर टिकी हैं। तुम्हीं और सिर्फ तुम्हीं ऐसे सरदार हो जो उस काफिर की नाक में नकेल डाल सकते हो। इन सब सरदारों को लेकर मनचाही जितनी फौज से उस पर हमला बोलो और पन्हालगढ़ की चट्टानों से उसका सिर टकराकर चकनाचूर कर डालो। मुझे एहसास सा हो रहा है कि अफजलखाँ के खून का बदला लेना तुम्हारी ही किस्मत में लिखा है। फाजलखाँ को भी तुम्हारे साथ भेजूँगा। जाओ मेरे जवान, जाओ। और हाँ, वह कितना भी कहे, उससे मुलाकात के लिये राजी मत हो जाना।" सुलतान ने किसी तरह फुसलाकर रुस्तमें जमां को तैयार कर लिया।

कुछ दिन तो दोनों पक्ष ऐसे ही डटे रहे। एक दिन अचानक महाराज के नेतृत्व में मराठा सैनिक रुस्तमें जमां की सेनाओं की तरफ लपके। उसकी सेनाएँ भी आगे को बढ़ीं।

एक स्थान पर पहुँचकर शिवाजी की सेनाएँ टुकड़ियों में बँट गयीं। एक टुकड़ी महाडिक के नेतृत्व में दायीं तरफ को मुड़ी ; दूसरी जाधव के नेतृत्व में बायें हाथ की ढलानों पर उतरने लगी। इसी प्रकार दोनों ओर ४५ अंश के कोण से क्रमशः जगताप घाटगे और खर्राटे तथा पंढरे की टुकड़ियों ने नीचे की ओर जाने वाली पगडण्डियाँ सम्भाल लीं। महाराज अपनी टुकड़ी के साथ मुख्य मार्ग से आगे बढ़े। रुस्तमें जमां भी सीधे इधर से ही बढ़ा चला आ रहा था।

नजदीक आने पर भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। फतेहखाँ की सेना से महा-दिक भिड़े थे तो घोरपडे से जगताप घाटगे निपट रहे थे। मराठा सैनिकों ने सुलतान की सेना के बड़े भाग को इस तरह उलझा लिया था तो भी उनका संख्या बल शिवाजी से कई गुना अधिक था।

अब रुस्तमें जमां शिवाजी के सामने खड़ा था। कोई १००-१५० गज का फासला ही बीच में होगा। उसने अपनी तलवार आसमान की तरफ उठाकर जोर से नारा लगाया—अल्ला हो अकबर ! उसके साथियों ने उसे दोहराया और नारा घाटियों में गूँज उठा।

तभी 'हर-हर महादेव' की ध्वनि भी गूँज उठी। परन्तु फाजलखाँ के ठीक पीछे से। उसकी सेना कानों पर विश्वास न कर सकी।

परन्तु सत्य तो सत्य था। नेताजी पालकर ने पूर्वनिर्धारित योजनानुसार पीछे से धावा बोलकर फाजलखाँ के होश-हवास गायब कर दिये।



नेताजी का घोड़ा जिधर को मुड़ जाता, उधर ही बीजापुर की शान मिट्टी में मिल जाती

इधर नंगी तलवार हाथ में लिये शिवाजी बढ़ते ही चले आ रहे थे।

जोर का जयघोष हुआ—हर-हर महादेव !

घाटियाँ ध्वनियों और प्रतिध्वनियों से गूंज उठीं।

रुस्तमें जमां के माथे पर पसीना निकल आया। रक्त तो मानो जम ही गया।

"या अल्लाह ! भागो ! वापिस भागो !" चीखता हुआ वह किसी तरह जान बचाकर भागा। परन्तु भागने का पहला काम फाजिलखाँ का ही था क्योंकि वह भागने का आदि था।

तुरन्त नेताजी पालकर ने अपने घोड़े की लगाम खींची और रुस्तमें जमां का पीछा करने को मुड़ा। घोड़ा हिनहिनाकर दोनों पैरों पर खड़ा हुआ और आगे को लपकने ही वाला था कि शिवाजी ने आवाज देकर पुकारा—"नेताजी ! कायरों के खून से अपनी तलवार गंदी न करो। भागने दो बेचारे को। कम से कम सुलतान से जाकर तो बतायेगा कि हम किस मिट्टी के बने हैं। जाने दो !"

युद्ध साहित्य का यह एक अनुपम पृष्ठ ही कहा जायेगा कि शिवाजी की सेना ने १८ दिन के अल्प समय में शत्रु के २१ किलों पर अपना अधिकार कर लिया।

इस युद्ध के बाद शिवाजी ने नेताजी को बीजापुर तक आक्रमण करने की आज्ञा दी तथा खजाना लूटने का आदेश दिया और स्वयं जीते हुए किलों और इलाके की व्यवस्था करने में लग गये।

अब पन्हालगढ़ दुर्ग ही उनकी गतिविधियों का केन्द्र बना था।

१५
धोखेबाज–अंग्रेज

शिवाजी के विजय-अभियान नित नवीन सफलताएँ प्राप्त कर रहे थे। एक के बाद दूसरा दुर्ग उनके अधिकार में आता जा रहा था। स्वराज्य का विस्तार देख कर जनता प्रफुल्लित थी, परन्तु राष्ट्र के शत्रु व्याकुल। गोआ स्थित पुर्तगाली गवर्नर ने अपनी सरकार को सूचित किया था—"इस गति से बीजापुर की सारी रियासत ही थोड़े समय में इस बागी के कब्जे में आ जायेगी।"

डच गवर्नर ने भी अपने देश को पत्र डाला था—"यह शिवाजी तो खास बीजापुर तक ही आ पहुँचा है।"

बीजापुर की बेचैनी का तो वर्णन करना ही मुश्किल है। सुलतान को स्वप्नों में भी शिवाजी की नंगी तलवार नजर आती थी।

बीजापुर की बड़ी साहिबा बड़ी कुपित थी। कोई भी सरदार उसके बेटे के राज्य की रक्षा नहीं कर पा रहा था। जो जाता था, मुँह पिटवाकर चला आता था या बलि का बकरा बन खुदा का प्यार हो जाता था। खिसियानी बिल्ली की तरह वह गुर्राती और अक्सर कारिन्दों पर गुस्सा निकाल लेती। प्रायः महल की ऊपरी छत पर टहलती रहती। बहुत सोचती, फिर भी कुछ न सोच पाती।

एक दिन यूँही चहलकदमी कर रही थी और मन ही मन बुदबुदा रही थी—"कम्बख्त शिवाजी हमारी शान मिट्टी में मिलाये जा रहा है। और वह ही क्यों ? यह सिद्दी जौहर का बच्चा ! बदतमीज बीजापुर की परवाह ही नहीं करता। कुर-नूल में बैठा है। मानो वह जागीरदार नहीं, खुद सुलतान है। कम्बख्त कहीं का।"

फिर बुदबुदाई—"ऐसा क्यों नहीं हो सकता ? हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है। ठीक है, यही ठीक है।" जोर से आवाज लगायी, "अरे कोई है !"

एक पहरेदार ने आकर सलाम किया।

"जाओ और सुलतान से जाकर कहो कि हमने याद किया है," बड़ी साहिबा ने कड़ककर कहा।

सुलतान आ गया तो बड़ी साहिबा ने कहना शुरू किया—"क्यों नहीं सिद्दी

को इस शिवाजी से भिड़ने को कहते ?"

"सिद्दी को ?" सुलतान ने चौंककर पूछा।

"हाँ, सिद्दी को ! तुम इतना भी नहीं समझते बेटा ! अगर शिवाजी को शिकस्त दे दी, तो काफिर का दिमाग ठिकाने आ जायेगा और यदि सिद्दी मारा गया, तो यह हरामी जो तुम्हारी रत्तीभर परवाह नहीं करता, अपनी ही मनमानी करता है, रास्ते से हट जायेगा। मतलब साफ है, तुम्हारे दोनों ही हाथों में लड्डू हैं," क्रूर हँसी हँसते हुए बड़ी साहिबा ने अपने मन की बात कही।

सिद्दी को एक बड़ा प्रेमपूर्ण पत्र लिखा गया जिसमें उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी थी और दरवार में आने का निमंत्रण दिया गया था।

पत्र पाकर वह भी फूला नहीं समाया और शीघ्र ही दरवार में उपस्थित हुआ।

"सिंद्दी सरदार आओ ! हमारे नजदीक बैठो ! जब कोई काम नहीं आता तो तुम हमारे काम आते हो। तभी तो हमें भी तुम पर इतना फख्र और भरोसा है। क्यों ?" सुलतान ने चापलूसी भरी बात की।

"आपकी मेहरबानी है परवरदिगार ! वरना यह नाचीज किस काबिल है। हुक्म दीजिए मुझे क्या करना है," सिद्दी जौहर चढ़ाये में आ गया।

"इस शिवाजी के बच्चे ने नाक में दम कर रखा है : सिर्फ तुम्हीं उसे जिन्दा पकड़कर ला सकते हो। हम चाहते हैं तुम्हें अपना सिपहसालार बनाकर उसकी तबीयत दुरुस्त करने के लिये भेजें।"

"जैसा हुक्म हो सरकार का। मेरे सिर की भी जरूरत हो तो वह भी आपकी सेवा में हाजिर है।"

सुलतान खुशी से झूम उठा। सिद्दी जौहर को उठकर गले लगा लिया और बोला—"आज से हम तुम्हें सलावतखाँ का नया खिताब भी बख्शते हैं।"

३०,००० की विशाल सेना लेकर सिद्दी जौहर मराठों से निपटने के लिये और शिवाजी को जिन्दा पकड़कर दरवार में लाने के इरादे से बीजापुर से निकला। रुस्तमें जमां, बाजी घोरपड़े, सिद्दी मसूद, गुड़कोलकर जैसे सरदार तो साथ थे ही, अफजलखाँ का बेटा फजलखाँ भी अपने बाप के कत्ल का बदला लेने के इरादे से साथ चला था।

शिवाजी को उसकी एक-एक गतिविधि का पता चलता जा रहा था। सिद्दी जौहर की सेनाओं के कूच की सूचना उन्हें जिस समय मिली, उस दिन वे मीर दुर्ग के द्वार पर थे। वहीं एक शुभ समाचार भी मिला था। सेनापति दारोजी ने सूचना दी थी कि वह राजापुर में अफजलखाँ के उन तीन जहाजों पर अधिकार करने गया था जो वहाँ लंगर डाले पड़े थे। परन्तु उनके पहुँचने से पहले ही अंग्रेज व्यापारियों ने उन पर कब्जा कर लिया था। उन अंग्रेजों पर हमला कर उसने न केवल तीनों जहाजों पर कब्जा किया है, अपितु फिलिप ग्रिफफोर्ड नामक अंग्रेज

अधिकारी को भी बन्दी बना लिया है।

"शाबाश ! बहुत शुभ समाचार है," महाराज ने दारोजी की पीठ ठोकी।

दारोजी ने अपनी बात पूरी की—"महाराज ! अब ग्रिपफोर्ड की मुक्ति के बदले राजापुर स्थित अंग्रेज प्रतिनिधि हेनरी रेविंगटन बीजापुर के खिलाफ हमारी मदद करने को तैयार है।"

"तब तो और भी अच्छी बात है। अंग्रेजों के पास दूरभेदी तोपें हैं जो न हमारे पास हैं और न बीजापुर के सुलतान के। अगर वे हमारी मदद करें तो सिद्दी की सिट्टी चार घण्टे में गुम हो जायेगी। लेकिन ये अंग्रेज भी कम धूर्त नहीं हैं। चौकन्ने रहना, चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं," शिवाजी ने दारोजी को सचेत किया।

पन्हालगढ़ किले की जगह लड़ाई के लिए ठीक रहेगी, यह सोचकर शिवाजी २ मार्च, १६६० को वहाँ जा पहुँचे और सिद्दी जौहर के आने की प्रतीक्षा करने लगे। अपने पास उपलब्ध छोटी तोपें उन्होंने किले की दीवारों पर लगवा दीं।

उधर सिद्दी जौहर तूफान की तरह गर्जता हुआ आया और किले के चारों ओर उसकी विशाल सेना ऐसे घेरा डालकर पड़ गयी जैसे किसी छोटे द्वीप को समुद्र की तूफानी लहरें घेर लेती हैं।

सिद्दी ने हमला बोला। दुर्ग से छूट रही तोपों की मार से बचते-बचाते उसके सैनिक आगे बढ़े।

बढ़ते ही रहे। मराठा सैनिक कहीं दिखाई नहीं दिये।

फिर अचानक दुर्ग से मराठा सेना सिद्दी की सेना पर टूट पड़ी।

बीजापुर की सेना दुर्ग से छोड़ी जा रही तोपों और लड़ रहे सैनिकों की तलवारों की दोहरी मार के सामने ज्यादा देर न टिक पायी और पीछे लौट गयी।

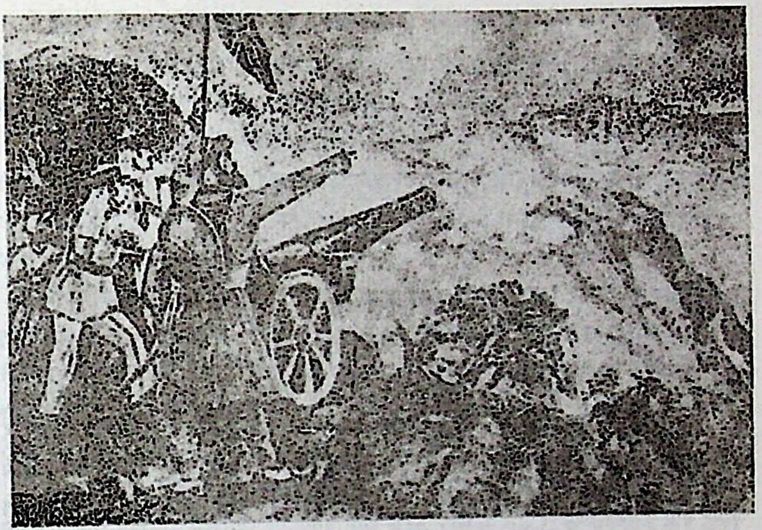
सिद्दी समझ गया, जब तक तोपों का जवाब उनके पास नहीं होगा, वे मराठों का बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे।

फजलखाँ ने सुझाव दिया—राजापुर में अंग्रेजों के पास दूर तक मार करने वाली तोपें हैं। क्यों न हेनरी रेविंगटन से मदद माँगी जाय ?

सिद्दी को रास्ता मिल गया। तुरन्त राजापुर की तरफ घुड़सवार दौड़ाये गये।

अंग्रेज अधिकारी सिद्दी की मदद की प्रार्थना पर विचार करने के लिये एकत्र हुए। मेज के चारों तरफ बैठे बातचीत कर रहे थे कि शिवाजी को दिये वायदे से मुकरा जाय या नहीं, और सिद्दी जौहर की मदद की जाय अथवा नहीं। सिद्दी जौहर की मदद करने का सुझाव हेनरी रेविंगटन ने ही दिया।

फिलिप ग्रिपफोर्ड ने अपना मत व्यक्त किया—"शिवाजी की ताकत को कम नहीं आँकना चाहिए। यदि हमारी मदद लेकर सिद्दी जौहर किसी तरह जीत भी गया तो शिवाजी चुप नहीं बैठेगा। बीजापुर के सुलतान से भी पहले हमारी अक्ल दुरुस्त करेगा। यह सौदा महँगा पड़ेगा।"



स्वयं हेनरी रेविंगटन ने पन्हालगढ़ का निशाना साधा और तोप का गोला दाग दिया।

हेनरी रेविंगटन ने किसी की बात पर ध्यान न दिया और कहा—"माना हमने शिवाजी के सेनापति से आपको छोड़ने के बदले उसकी मदद करने का वायदा किया था। लेकिन हम इतने बुद्धू नहीं हैं कि वायदा पूरा करने के चक्कर में अपनी ही जड़ काट डालें। अगर शिवाजी का स्वराज्य बन गया तो हम फिरंगियों की दाल कैसे गलेगी? हमारा कॉलोनियाँ बनाने का सपना धरा का धरा रह जायेगा। फिर कूटनीति की भी यही माँग है कि सिद्दी जौहर की ही मदद करें।"

२ अप्रैल, १६६० को हेनरी रेविंगटन और मिंघम समेत अंग्रेजों की एक टीम तोपें लेकर पन्हालगढ़ की तरफ चल पड़ी और १० अप्रैल को सिद्दी जौहर के शिविर में जा पहुँची।

एक ऊँचे टीले पर तोप लगायी गयी। बराबर में यूनियन जैक लहराया गया। हेनरी रेविंगटन ने स्वयं अपने हाथ से तोप का मुँह पन्हालगढ़ दुर्ग की तरफ किया। फिर दोनों हाथ ऊँचे उठाकर तोप में लगे लोहे के एक हत्थे को पकड़ा, निशाना साधा और झटके से हत्था नीचे को खींच दिया।

कान के परदे फाड़ देने वाले घोर गर्जन के साथ एक बड़ा गोला थर्राता हुआ पन्हालगढ़ की तरफ हवा की तेजी से निकल गया। टीला का टीला हिल उठा और पर्वत श्रृंखला पर इतना धुआँ फैल गया कि लगता था जैसे कई ज्वालामुखी एक साथ फूट पड़े हों।

१६

मुक्ति-पथ

तोप की आवाज सुनकर महाराज चौकन्ने हो गये। दौड़कर किले की दीवार पर पहुँचकर देखने लगे तो सामने टीले पर अंग्रेजों का झण्डा फहरा रहा था। तोप लगी थी और गोले दागे जा रहे थे। साथ ही दूर से सिद्दी जौहर की धुँधली-सी आकृति नजर आ रही थी।

महाराज गुस्से से लाल हो गये। डेढ़ महीने पहले ही अंग्रेजों ने महाराज से सन्धि की थी। अंग्रेज शिवाजी को समुद्री लड़ाई में मदद करने वाले थे। आज महाराज किले में घिर गये तो अच्छा मौका समझकर अंग्रेजों ने उनसे बदला लेने की सोची। दो शक्तियाँ महाराज जी के विरुद्ध एक हो गयी थीं। वैसे दोनों ही पराये थे। मौका पड़ने पर वार करते ही। परन्तु जो अपने थे वे भी मौका नहीं चूके। जैसे ही महाराज घेरे गये, तो गोविन्द पासलकर और केदार जी खोपड़े ने इनामी गाँवों के बदले महाराज के विरुद्ध सिद्दी को साथ देकर उसकी ताकत को बढ़ाया।

सिद्दी जौहर को इनका बल मिल जाने के कारण उसकी ताकत दुगुनी हो गयी। महाराज के अनेक सैनिक एक-दो बार भागने के प्रयत्न में मारे भी गये।

महाराज को आशा थी कि बाहर से नेताजी पालकर हमला कर घेरा तोड़ेगा, परन्तु आशा पूर्ण होना सम्भव नहीं दीख रहा था।

वर्षा शुरू हो गई, परन्तु सिद्दी छावनी सम्भाले डटा रहा। रात-दिन गश्त लगाते हुए नजर आता था। बीजापुर दरबार ने जो पत्र औरंगजेब को लिखा था उसके उत्तर के अनुसार शाइस्ता खाँ बड़ी फौज लेकर २८ जनवरी, १६६० को दिल्ली से निकलकर पूना तक रास्ते में तहलका मचाता हुआ दिनांक ९ मई को पूना में घुस गया और शिवाजी के लालमहल में ही डेरे लगाकर बैठ गया।

उधर राजगढ़ में जीजाबाई अत्यन्त चिन्तित थीं। शिवाजी को मुक्त कराने का कोई योग्य उपाय हो नहीं पा रहा था। जितनी देर हो रही थी, उतने ही संकट बढ़ते जा रहे थे। आखिर एक दिन कुछ खास-खास आदमियों को बुलवाया गया।

भेंट करने जब सब पहुँचे तो उन्होंने देखा माताजी ने साड़ी कसी हुई है, कमर में तलवार लटकायी है और चेहरे पर वीर भाव छाया है। जैसे ही सब अभिवादन कर खड़े हुए तो माता जी ने गरजकर कहना शुरू किया—

"आप में से कोई पुरुषार्थी नहीं हैं। आप यहाँ किले के दायरे में ही घोड़े दौड़ाते रहते हो। शिवाजी को कुछ मदद पहुँचाना और बाहर निकालना अब आपके बस की बात नहीं है। वह अब मेरा काम है। मैं स्वयं मैदान में पहुँचूंगी और सिद्दी जौहर से मुकाबला करूँगी।"

सब देखते ही रह गये। क्या करें कुछ समझ नहीं आता था। आपस में मुँह ताक रहे थे। माताजी के चेहरे की ओर देखना सम्भव नहीं था। इतने में दूत ने आकर कहा, "सर नौबत नेताजी पालकर अभी आये हैं, माँ साहब से मिलना चाहते हैं।" गुस्से में माताजी ने कहा, "क्या काम है, मेरे से?" फिर कुछ रुककर बोलीं—"भेजो अन्दर।"

अन्दर प्रवेश करते ही सारी सभा का वातावरण तथा युद्ध-सज्जित माताजी का रौद्र रूप देखकर नेताजी पालकर सब कुछ समझ गये। अभिवादन कर बड़ी ही धीमी आवाज में कहने लगे—

"माताजी! महाराज जी की आज्ञा से ही मैं बीजापुर पर हमला करने गया था। अभी आया हूँ। सैनिक अगली आज्ञा की राह देख रहे हैं। अब मैं प्रथम महाराज जी को घेरे से बाहर निकालने जा रहा हूँ। आशीर्वाद माँगने पहुँचा हूँ, आज्ञा हो।" सब सरदारों की साँस में साँस आयी। माताजी ने नेताजी को फटकार-कर कहा—"शिवाजी को मुक्त कराने के बाद ही यहाँ मुँह दिखाना।"

यहाँ का प्रसंग तो पूरा हो गया। अब नेताजी के कर्तृत्व की बारी थी। नेताजी तो अफजलखाँ के वध के बाद घोड़े पर ही सवार थे। प्रतापगढ़ से लक्ष्मेश्वर, लक्ष्मेश्वर से पन्हालगढ़, पन्हालगढ़ से बीजापुर, बीजापुर से राजगढ़ और अब राजगढ़ से पुनः पन्हालगढ़ जाना था। फासला ५० मील का था।

महाराज शिवाजी को घेरे में फँसे अब तीन मास हो गये थे। न सिद्दी किले के अन्दर पहुँचा और न ही शिवाजी किले से बाहर निकले। स्थिति वैसी ही बनी थी जैसी पहले थी।

एक दिन महाराज ऊपर से देख रहे थे। जौहर की छावनी में बड़ी हलचल मची थी। सैनिक जैसे-तैसे घोड़ों पर सवार होकर छावनी छोड़कर एक ही दिशा में भागे जा रहे थे। दूर कहीं कभी-कभी बन्दूक की आवाज सुनायी दे रही थी। महाराज समझ गये कि नेताजी पालकर पहुँच गया है। कुछ आशा दीख रही थी, परन्तु थोड़ी ही देर में सब शान्त हो गया। छावनी के सैनिक लौट रहे थे। नेताजी का हमला निष्फल रहा। महाराज शिवाजी की आशा भी वैसे ही लुप्त हो गयी जैसे आषाढ़ मास में सूर्य की किरणें देखते-देखते बादलों में लुप्त हो जाती हैं।

महाराज की आँखों के सामने अब अँधेरा था।

एक दिन एक दुबला-पतला, शरीर से अर्धनग्न, फटी कम्बल लटकाये, थका-माँदा जासूस किले पर पहुँचा। वह महाराज जी को मिलने आया था। भूखा था। सर्वप्रथम महाराज ने उसके भोजन की व्यवस्था कर आराम करने को कहा। किन्तु वह महाराज से कुछ कहने को आतुर था।

एक ही साँस में उसने कह दिया—"चाकण किला घेरा गया है। शाइस्ताखाँ की २०,००० फौज घेरा डाले खड़ी है। अन्दर हमारे चार सौ सैनिक हैं। मुकाबला खतरनाक है।"

संकट अब सीमा पार कर चुका था। परन्तु शिवाजी को यहीं पर रास्ता दिखाई दिया। जिस रास्ते से जासूस जैसे-तैसे किले के अन्दर आया था, वही रास्ता किले से बाहर निकलने के लिये भी उपयोगी हो सकता है। एक महान् साहसी योजना महाराज के मस्तिष्क में कौंध गयी। बादल, बिजली, वर्षा, उमड़ते नदी-नाले, कीचड़ और घनी हरियाली से लदे पहाड़, भयानक जंगल उन्हें सभी अपने सहायक होते दिखाई दिये। साहसभरी आँखों में एक सपना तैर गया। पन्हालगढ़ से विशालगढ़ की ४० मील दूरी रात भर में पार करने का विचार उनके सामने आया।

"शुभस्य शीघ्रम्"—यही नीति काम आयेगी। और एक सैनिक को जासूस के साथ रास्ता देखने के लिये भेजा। दोनों ऊपर वापिस पहुँचे और महाराज ने निश्चय कर लिया। योजना बन गयी।

आषाढ़ के महीने का प्रथम चरण शुरू हो गया। वर्षा मूसलाधार हो रही थी। छावनी बरसात में पूरी भीग गयी थी, परन्तु ढिलाई नहीं थी। आषाढ़ का महीना आधा निकला जा रहा था। महाराज जी ने पूर्णिमा के दो दिन पहिले साथियों को एकत्रित किया और कहा—

"मुझे अब पन्हालगढ़ से निकल जाना चाहिए। यहाँ शक्ति लगाना और सिद्दी जौहर से लड़ना व्यर्थ है।"

साथियों के चेहरे पर आश्चर्य और आशा की चमक दौड़ गयी। आश्चर्य इसलिये कि सिद्दी जौहर का मजबूत घेरा तोड़कर निकला कैसे जायेगा और आशा इसलिये कि महाराज का कोई भी निश्चय, कोई भी कदम कभी निरर्थक नहीं होता।

१२ जुलाई, १६६०।

पूर्णिमा का दिन था। प्रातःकाल का समय। बादल छाये हुए थे। वर्षा हो रही थी। सिद्दी जौहर के सिपाहियों ने आश्चर्य से देखा कि पन्हालगढ़ किले का दरवाजा खोला जा रहा है। चारों ओर सनसनी फैल गयी। सेना सतर्क हो गयी। सिपाही सोचने लगे कि अब शिवाजी की सेना निकलेगी किन्तु सिपाहियों के



बिजली की कड़कड़ाहट और जंगली बरसाती नालों का शोर इन्हीं सब के बीच में फैला पड़ा था शिवाजी का मुक्ति-पथ

आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने देखा कि किले के दरवाजे से एक छोटी-सी गठरी जैसी आकृति बाहर आ रही है। गठरी नहीं, यह तो कोई आदमी है। अकेला व्यक्ति धीरे-धीरे गढ़ से उतर रहा है। जरूर शिवाजी की अक्ल अब ठिकाने आ गयी है। रसद-पानी माँगने आ रहा होगा। छावनी में पहुँच गंगाधर पन्त ने गम्भीर मुद्रा में पूछा, "जनाब सलाबत खान सिद्दी जौहर का शामियाना किधर है ?" सिपाहियों ने देखा दूत है। सिद्दी जौहर के पास शिवाजी का सन्देश लाया है। वे उन्हें सिद्दी के पास ले गये।

वकील ने उनके अनुमान को पक्का कर दिया। उसने सिद्दी से बात की महाराज का पत्र दिया। पत्र में लिखा था कि महाराज अकेले छावनी में आना चाहते हैं। वह भी रात को। वैसे महाराज बीजापुर की सेवा के लिये तैयार हैं। सिद्दी के लिये कुछ तोहफा भी था। वह भी उसे दिया।

वकील गंगाधर पन्त ने बड़ी चतुराई से काम लिया। वह सिद्दी की तारीफ करते रहे।

वकील ने अनेकों सरदारों को कुछ न कुछ भेंट चढ़ाई और किले का रास्ता पकड़ा।

शिवाजी के इस दूत का आना और फिर फौज के बीच से गढ़ में चले जाने का समाचार सिद्दी जौहर के सब सैनिकों की चर्चा का विषय बन गया। सभी

आनन्दित हो उठे। गर्मी और उसके बाद भारी वर्षा के बीच चार महीनों से लगातार डेरों में पड़े हुए उन सैनिकों ने बड़ी राहत की साँस ली। जान बची और इज्जत भी बहाल हुई। अब कल रात शिवाजी आयेगा और अपने आपको सिद्दी जौहर के हवाले कर देगा। चर्चा चल पड़ी—

"सुना जनाव कल रात शिवाजी आ रहा है।"

"बस सारी अकड़ निकल गयी।"

"अब पता लगेगा इस काफिर को कि आदिलशाही किस जगह कैद करके बन्द कर देगी।" जो हो यह सैनिकों के लिये वहुत आराम पहुँचाने वाली बात थी।

जो काम शिवाजी के सैनिक चार मास में नहीं कर पाये, वह चतुर वकील ने योजना अनुसार थोड़ी ही देर में पूरा कर दिया।

वकील ने सारा हाल महाराज को सुनाया। महाराज अब सारी योजना स्वयं बना रहे थे। सबको सूचना मिल रही थी।

बाजीप्रभु देशपाण्डे को ६०० सैनिक तैयार करने का हुक्म दिया।

त्र्यम्बक भास्कर को किले का सेनापति निश्चित किया गया। किले पर ६,००० सैनिक थे।

धीरे-धीरे सूर्य अस्ताचल को जा रहा था और शिवाजी महाराज किले के बाहर निकलने को तैयार हो रहे थे।

पानी बरस रहा था। खाँ की छावनी आनन्दविभोर होकर खाने-पीने, नाच-गाने में डूबी थी। पूर्णिमा थी परन्तु चन्द्रमा का पता नहीं था क्योंकि आकाश बादलों से घिरा था और वर्षा हो रही थी। सब तैयारी पूरी हो गयी। महाराज जगदम्बा के मन्दिर गये। साष्टांग प्रणाम किया और बाहर निकले। सैनिकों को लगा जगदम्बा की सवारी निकल रही है। महाराज जी ने त्र्यम्बक से कहा—

"हम चले, किला सम्भालना" धीरे से महाराज आँगन में पहुँचे तो पालकी तैयार थी। जगदम्बा का नाम लेकर बैठ गये। कहारों को चलने की आज्ञा दी गयी। यह दल कुछ ही क्षणों में अँधेरे में गायब हो गया। कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि उधर से ६०० आदमियों का काफिला नीचे उतर रहा है।

फिर वही बूंदा-बांदी, फिर वही बादलों का गर्जन। बिजली की कड़कड़ाहट और जंगली बरसाती नालों का शोर। इन्हीं सबके बीच फैला पड़ा था शिवाजी का मुक्ति-पथ।

१७

कृतार्थ जीवन

पन्हालगढ़ किले से रात के दस बजे शिवाजी महाराज की पालकी के साथ ६०० सैनिक मुक्ति-पथ पर अग्रसर हुए। नीचे सिद्दी जौहर की छावनी से नाच-गाने की धुन सुनायी दे रही थी। धीरे-धीरे सिद्दी जोहर की छावनी बरसात की मार से और शराब के असर से बेहोश हो गयी। पन्हालगढ़ किले के सैनिक अपने-अपने काम पर तैनात हो गये। पालकी किले का परिसर छोड़कर संकरी पगडण्डी पर बढ़ने लगी तो वर्षा जोरों पर थी। जैसे-जैसे बादलों की कड़कड़ाहट तेज होती गई, वर्षा का जोर बढ़ता गया, वैसे ही मावले वीरों का निश्चय हिलोरें लेता गया। कहीं पर भी महाराज को पैदल चलना पड़े, यह उन्हें स्वीकार नहीं था। एक खाली पालकी भी साथ लेने का महाराज ने आग्रह किया था।

दूतों ने रास्ता पहले ही खोज रखा था। बड़ी सावधानी बरती जा रही थी। अँधेरे में फुर्ती से ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी घाटियों और दर्रों के बीच चलना बड़ा ही कठिन कार्य था। पहाड़ी के ऊपर से बड़े-बड़े पतनाले तेजी से नीचे की ओर गिर रहे थे। यह यहाँ की एक विशेषता है। इसीलिये इसे पन्हालगढ़ के नाम से पुकारा जाता है।

मावले रात में सूरज को अपने कन्धों पर उठाये बड़ी हिम्मत से चले जा रहे थे। संकट का डर तो पग-पग पर था ही। अभी पहाड़ी पार कर जरा ढलान पर चले, तो सामने सिद्दी की छावनी दिखाई देने लगी। घेरे की सीमा नजदीक आ रही थी। मावले अपनी साँस रोके और बिना आवाज किये मुक्ति-पथ पर अग्रसर थे। वर्षा और तूफान धीरे-धीरे तेज होता जा रहा था। ईश्वर की इच्छा ही ऐसी थी कि महाराज धीरे से सुरक्षित निकल जायें। जासूसों द्वारा निर्धारित मार्ग बिलकुल सुनसान था, कहीं भी पहरेदार का निशान तक दिखाई नहीं दिया। अब महाराज की पालकी मैदान से गुजर रही थी तो घेरे की सीमा शुरु हो गयी। किसी भी क्षण, कुछ भी हो सकता था। पग चल रहे थे, पर साँस रुकी थी। जरा-सी भी आवाज नहीं। पालकी घेरे के पिछवाड़े पहुँच गयी, परन्तु अभी संकट टला नहीं था। घेरे

से पार तो हो गये थे, परन्तु संकट से बाहर नहीं। अभी पत्थर की मार में थे, अब तीर की मार में पहुँचे। थोड़ी ही देर में बन्दूक की मार से भी परे हो गये।

एक संकट टला, अब महाराज घेरे के बाहर थे। पन्हालगढ़ से विशालगढ़ ४० मील की दूरी तय करनी थी। मैदानी इलाके में पहुँचे तो कीचड़ ही कीचड़ होने के कारण चप-चप की आवाज शुरू हो गयी। बारह सौ पैरों की चप-चप की आवाज भी कोई मायने रखती है। विशालगढ़ किले पर जाने का यही एकमात्र मार्ग था। सैनिक चलने के अलावा कहीं रुकने को तैयार न थे। बाजीप्रभु देशपाण्डे, जो इस योजना के प्रमुख थे, सब सैनिकों को उत्साहित कर आगे बढ़ने लगे। शिवाजी की सुरक्षा की सारी जिम्मेवारी बाजीप्रभु सम्भाल रहे थे। यह एक अग्नि-परीक्षा थी। अब छावनी का घेरा बहुत पीछे रह गया और विशालगढ़ भी अभी बहुत दूर था। कब क्या होगा कोई नहीं जानता था। दूर गश्त लगाने वाले सिद्दी के सैनिक कहीं जंगल में टोह लेने के काम पर तैनात होंगे ही। उनसे बचकर निकलना और वह भी छः सौ सैनिकों के समेत, यह कठिन ही नहीं असम्भव नजर आता था। पालकी निकली जा रही थी तो वहीं रास्ते में थोड़ी दूरी पर एक झोंपड़ी के बाहर कोई झाँकने लगा। सैनिक समझ गये, धोखा है। विश्वास हो गया कि यह कोई गश्त वाला ही होगा। अब यह छावनी में जाकर सूचना देगा, छावनी जागेगी और सिद्दी के सैनिक पीछा करने निकलेंगे ही।

अब संकट निश्चित था। बिना कुछ कहे सब तेज भागने लगे। भागने से ही कुछ काम नहीं चलेगा, इसलिए आगे जाने के बाद शिवाजी ने खाली पालकी में अपने जैसे ही दिखने वाले एक सैनिक को अपने ही वस्त्र पहनाकर बिठा दिया। बीस-पच्चीस सैनिकों के साथ उस पालकी को धीरे-धीरे पीछे रहने के लिये कहा और स्वयं तीव्रगति से आगे बढ़ चले।

गश्त लगाने वाला सैनिक ऊबड़-खाबड़ रास्ता पार कर अपनी छावनी में पहुँचा। छावनी के सैनिक नींद से जाग उठे और बड़बड़ाये "बाँध लाये क्या उस शिवाजी के बच्चे को?"

बिचारे सैनिक यही विचार कर सोये थे कि शिवाजी को छावनी में हाथ बाँध कर लाया जायेगा। स्वप्न में भी वे यही देख रहे थे। अतः वही बड़बड़ाने लगे। परन्तु जब उन्हें पता लगा कि शिवाजी आया नहीं और किले से निकल गया, घेरा लाँघकर भाग गया तो सिर पकड़ कर बैठ गये। सिद्दी जौहर को आनन-फानन में गहरी नींद से जगाया गया। वह चिल्लाया, "ऐसा नहीं हो सकता। तुमने क्या ख्वाब देखा है? इतना बड़ा घेरा फाँदकर वह सही-सलामत कैसे निकल सकता है?" जासूस ने हकीकत बयान की, "ख्वाब नहीं हजूर हकीकत है, मैंने अपनी आँखों से देखा है कि शिवाजी पालकी में बैठा है और मावले पालकी को कन्धे पर उठाये जा रहे हैं।"

एक ही क्षण में सिद्दी जौहर की आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया। रंगीन सपने हवा में उड़ गये। आज सवेरे ही जो मुरादें उसने अपनी मुट्ठी में बाँधी थीं, वे रेत की तरह उँगलियों के रास्ते रिस गयीं। उसने अपने हाथ मसले। थोड़ी देर में कुछ हिम्मत बाँधी और अपने दामाद सिद्दी मसूद को हुक्म दिया, "दौड़ो! दो-तीन हजार फौज लेकर दौड़ो! पकड़ो शिवाजी को भागने मत देना।" फुर्ती से सिद्दी निकला, फौज निकली, परन्तु घोड़ों को कीचड़ में दौड़ाना बड़ा कठिन था। तो भी घोड़े जैसे-तैसे चल रहे थे। आँख फाड़-फाड़कर सैनिक शिवाजी को खोजते चले जा रहे थे। जब उन्हें छावनी से निकले काफी समय हो गया तो बिजली कड़की। उसके प्रकाश में उन्होंने देखा कि पालकी को उठाये कुछ मावले जा रहे हैं। सिद्दी मसूद घोड़े की पीठ पर ही उछल पड़ा, उसने गरजकर कहा, "पकड़ो! काफिर को घेरो! निकलने नहीं देना।" आखिर पालकी घेरी गयी। सिद्दी मसूद ने कड़कती आवाज में कहा, "इस पालकी में कौन है?" एक मावले ने उत्तर दिया, "शिवाजी महाराज।" सिद्दी ने पर्दा हटाने का हुक्म दिया। पर्दा हटाया गया। मसूद को सच ही शिवाजी महाराज नजर आये। उसने दूर से ही कहा, "पालकी छावनी की ओर ले चलो।" पालकी आगे-आगे, सैनिक पीछे-पीछे लम्बा रास्ता तय कर सब छावनी पहुँच गये। कुछ घुड़सवार तो वैसे ही पहले पहुँचे थे। उन्होंने सिद्दी जौहर को सूचना दी—"पालकी में बैठकर शिवाजी भागने की कोशिश कर ही रहा था, तो मसूद की बहादुरी से पकड़ा गया।"

सारी छावनी इकट्ठी हो गयी, खुशी के कारण सिद्दी फूला नहीं समा रहा था। दामाद सिद्दी मसूद का लाख-लाख शुक्रिया अदा करने लगा। परन्तु आषाढ़ मास में जैसे बिजली चमकती है और बाद में अँधेरा होता है, वैसा ही हुआ। सिद्दी के हुक्म से शिवाजी की पालकी का पर्दा एक मराठा सैनिक ने हटाया। शिवाजी महाराज बाहर निकले और खड़े हो गये। सब गौर से ताकने लगे। क्या यही शिवाजी है? सिद्दी को कुछ सन्देह हुआ। सन्देह पक्का हुआ कि यह तो शिवाजी नहीं है। तोबा! तोबा!! सिद्दी ने पूछा, "तू कौन है?" शिवाजी ने उत्तर दिया, "मेरा नाम शिवाजी है।" सिद्दी ने बड़े गरजकर कहा, "धोखा देता है! मैं शिवाजी को पहचानता हूँ। कौन है तू? शिवाजी का भूत तो नहीं है। हम भूत से नहीं डरते। अभी तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायेंगे। सच बोल तू कौन है?" शिवाजी बोलने लगा, "खाँ साहेब, सच कहता हूँ मैं किले का शिवाजी नाम का नाई हूँ। किले पर खाने का सामान कम हो गया है, भूखों मरना पड़ता है। अतः वहाँ से चुपके निकला हूँ। घर की ओर जा रहा हूँ। खाँ साहेब! जान बख्शो," शिवाजी वेषधारी नाई ने खासी बात बनायी। सिद्दी जौहर ने पूछा, "क्या शिवाजी किले से निकल गया है?" नकली शिवाजी ने कहा, "इतना मजबूत घेरा लाँघकर शिवाजी कहाँ निकल सकते हैं? आपके होते हुए परिन्दा भी उड़ नहीं सकता। सुना है

महाराज कल आपको छावनी में आपसे मिलने आयेंगे। आपने उनकी जान बख्शी है, इसलिए वे खुश हैं। इस खुशी में कल किले पर नाच-गाना भी हुआ था।"

सिद्दी जौहर ने फिर से पूछा, "क्या शिवाजी अभी किले पर ही हैं?" जवाब मिला, "हाँ, खाँ साहेब, अभी किले पर ही हैं।" खान के जासूस ने आगे आकर बड़े जोर से कहा, "ये जासूस है। झूठ बोल रहा है। पूरा नाटक रच रहा है। बड़ा चालाक जासूस दिखता है। खाँ साहेब! मैंने अपनी आँखों से शिवाजी को पालकी में जाते देखा है। साथ नंगे बदन वाले भी देखे हैं। मेरी आँखें धोखा नहीं दे रहीं। खुदा के नाम पर मैं आपसे अर्ज करता हूँ कि अब देर नहीं करनी चाहिए। पीछा ही किया जाना चाहिए।"

सिद्दी जौहर के तो होश उड़ गये। सच क्या हो सकता है, इस चक्कर में फँस गया। अगर शिवाजी किले पर ही हुआ और हम पीछा करने निकल पड़े तो वह किले से बाहर आते ही छावनी पर टूट पड़ेगा। तोबा! तोबा! दाल में कुछ न कुछ काला जरूर है। जबरदस्त धोखा हुआ है। भूत का खेल बेशक न हो, लेकिन यह सच है कि शिवाजी हवा बनकर निकला है।

सिद्दी ने फिर से हिम्मत बटोरी। फिर से नकली शिवाजी से पूछा, "यह शिवाजी जैसे कपड़े क्यों पहने हो? यह टोप कहाँ से उड़ाया?" नकली शिवाजी ने बड़े आत्मविश्वास से जवाब दिया, "खाँ साहब, मैं जात का नाई हूँ। महाराज जी ने मुझे ये कपड़े दिये हैं। यह टोप तो पुराना है। नौकर से माँगा तो उसने दे दिया। हमारे किले के पहरेदार ने मुझे शिवाजी समझकर कुछ कहा नहीं। मैं चुपके से निकल आया। खाँ साहब! खुदा के लिये जान बख्शो। मैं तो अब कहीं का न रहा। घर जाकर बाल-बच्चों को मिलूंगा। अपने बच्चों की कसम, मैं सच बोल रहा हूँ।" गुस्से से जौहर गर्जा, "चुप कर हरामजादे!"

सिद्दी जौहर अपने दामाद मसूद की ओर देखकर बोला, "अपनी सेना लेकर दौड़ो। शिवाजी को पकड़ो। मैं खुद यहीं तैयार रहता हूँ। हो सकता है शिवाजी झाँसा दे रहा हो। शिवाजी सेना लेकर अपनी छावनी पर हमला भी बोल सकता है।"'

मसूद अपने घोड़ों को कभी चलाता, कभी दौड़ाता बहुत दूर तक पहुँचा। फिर भी उसको नजर कुछ नहीं आया।

अब सुबह हो रही थी। छः सौ सैनिकों के पैरों के निशान देखकर यह पक्का हो गया कि शिवाजी भाग निकला है। उसने घोड़े तेज दौड़ाये।

मराठा सैनिकों के लिये जिन्दगी और मौत का खेल शुरू हो गया। सुबह का समय था। छः सौ मावले रात के दस बजे से जान हथेली पर रखकर और महाराज को कन्धे पर उठाकर भाग रहे थे। थक कर रुकने का मतलब था मौत। अब विशालगढ़ किला दस मील की दूरी पर था। दोनों सेनाओं का फासला कम होता

जा रहा था। बाजीप्रभु की तलवार का अब करिश्मा दिखना था। स्वराज्य की तकदीर का फैसला होने वाला था।

अब विशालगढ़ किला सामने नजर आने लगा। सूर्य बादलों को चीरकर बाहर आ गया। महाराज की निगाह विशालगढ़ पर लगी थी। १३ जुलाई, १६६० की तिथि थी। फासला छः-सात मील का शेष था। परन्तु यही फासला मानो दुगुना हो गया। दौड़ते-भागते मावले गजापुर की घाटी तक तो पहुँचे, परन्तु क्योंकि सब थककर चूर हो गये थे, आगे बढ़ना दूभर हो गया। फिर मैदानी इलाके से जाना मानो मौत का सामना करना था। विशालगढ़ अभी भी चार मील दूर था।

विशालगढ़ पहुँचना भी एक भयानक प्रसंग हो सकता है क्योंकि विशालगढ़ को घेरे जसवन्तराय दलवी और सुर्वे डटे थे। उस घेरे को काटकर पहुँचना असम्भव था। मसूद के साथ दो-दो हाथ करने का अर्थ था दोनों सेनाओं के बीच उलझ जाना।

बाजीप्रभु ने यह सब जान लिया। इस सँकरी घाटी में ही मोर्चा लगाने का निश्चय पक्का हो गया। बाजीप्रभु ने शिवाजी से कहा, "आप यहाँ से आगे चलें। ये सैनिक आपके साथ हैं। मैं यहाँ थोड़े से सैनिकों के साथ मोर्चे पर डटा रहूँगा। एक भी मुगल आगे चढ़कर नहीं जाने पायेगा। जब तक आप गढ़ तक नहीं पहुँच जाते, तब तक मैं यह घाटी रोके रहूँगा। आप निश्चिन्त होकर आगे बढ़ें। समय हाथ से निकल रहा है, कृपया आप जल्दी करें।" महाराज विचार कर ही रहे थे कि फिर बाजीप्रभु ने कहा, "महाराज, आप हमारा विचार न करें। आप जैसे लाखों के अन्नदाता सही-सलामत रहे, तो मेरे जैसे हजारों पैदा हो जायेंगे। देर न करो, महाराज! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। जब तक तोपों की आवाज नहीं सुनूंगा, मैं प्राण नहीं छोड़ूंगा।" बाजीप्रभु ने झुककर महाराज के चरण छुए और हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

बस शिवाजी निकल पड़े। चलते-चलते एक बार पीछे मुड़कर देखा तो बाजी के साथ रुके सब सैनिकों ने एक बार फिर प्रणाम किया। जिस रास्ते से महाराज गये थे, वहाँ की मिट्टी सबने अपने माथे पर लगायी।

सेनापति बाजीप्रभु देशपाण्डे के 'हर-हर महादेव' के घोष के साथ ही सबने सूर्य भगवान की ओर हाथ उठाकर युद्धनाद किया—हर-हर महादेव!

मसूद के सैनिकों ने भी जोर से नारा लगाया—अल्ला हो अकबर!

बाजीप्रभु अपने जीवन के आखिरी मोड़ पर खड़े थे। मौत से दो-दो हाथ करने थे। लड़ाई शुरू हो गयी। मसूद की सेना के दस्ते के बाद दस्ते आ-आकर टकरा रहे थे और मराठा सैनिकों से मार खा-खाकर वहीं ढेर होते जा रहे थे।

इधर महाराज विशालगढ़ किला चढ़ने लगे। साथ में ३०० सैनिक थे। जसवन्तराय दलवी और सुर्वे घेरा डाले थे। महाराज एकाएक पीछे से जा लपके।

एक ही धावे में घेरा तोड़ना था। दोनों हाथों से तलवार चलाते, महाबली के अवतार बने थे। मराठा सैनिकों ने महाराज के चारों ओर घेरा डाला हुआ था।

लगता था स्वराज्य स्वयं अपना रास्ता बना रहा है।

इधर बाजीप्रभु अपने सैनिकों समेत दर्रे में डटा था। मावले ऊँचाई पर चढ़कर बड़े-बड़े पत्थर लुढ़का रहे थे। मसूद के सैनिक हैरान थे—हम तो यहाँ शिवाजी को ढूंढ़ने आये थे, पर यह तो मौत की घाटी नजर आती है। करें तो क्या करें? पीछे भी हम लौट नहीं सकते, आगे बढ़ना कठिन हो रहा है।

मसूद और बाजीप्रभु की सेनाओं में भीषण युद्ध चल रहा था। अत्यधिक थके होने के कारण मराठा सैनिकों का बल कम पड़ता जा रहा था। बहुत से दम तोड़ रहे थे। अनेकों की साँस फूली हुई थी। जो शेष थे, वे भी भलीभाँति जानते थे कि अधिक देर तक मुस्लिम सेना से मुकाबला करना असम्भव रहेगा। परन्तु खून की अन्तिम बूंद तक लड़ने का उनका निश्चय अटल था।

बाजीप्रभु के शरीर पर तो अनेकों घाव लगे थे। फिर भी वह पूरे उत्साह के साथ अपने सैनिकों में प्रेरणा संचार कर रहा था। उसकी तलवार जिधर को घूम जाती उधर ही खाई पैदा हो जाती। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि वे हारेंगे या जीतेंगे। चिन्ता केवल यही थी कि महाराज शिवाजी के दुर्ग में सकुशल पहुँचने तक वे डटे भी रह सकेंगे, या नहीं।

दबाव बढ़ता जा रहा था। मसूद की असंख्य सेना के सामने आखिर कब तक टिक पायेंगे!

लेकिन नहीं। बाजीप्रभु ने मौत को भी अपने नजदीक आने से तब तक रोक दिया है, जब तक उसे तोप की आवाज का संकेत नहीं मिलता।

अचानक बाजीप्रभु ने देखा, उसका एक मावला योद्धा घायल हो जीवन की अन्तिम साँस ले रहा है। वेदना बड़ी तीव्र है, परन्तु प्राण निकल नहीं रहे हैं। दौड़कर बाजीप्रभु ने उस सैनिक का सिर अपनी हथेलियों में थाम लिया और उसकी आँखों में झाँककर बोला—"शाबाश, मेरे बहादुर! तुम धन्य हो जो देश के काम आये। हँसते-हँसते विदा लो। मैं भी शीघ्र वहीं आ रहा हूँ। मृत्यु से कहना मेरी बाट देखे। हाँ तब तक तो उसे बाट देखनी ही पड़ेगी, जब तक मैं महाराज को दिये वचन को पूरा नहीं कर लेता।"

और तभी मुसलमान सैनिक बाजीप्रभु पर टूट पड़े।

उधर शिवाजी महाराज को एक-एक पग बढ़ने के लिये जी-जान से जूझना पड़ रहा था। दोपहर के दो बज गये।

महाराज बेचैन थे। उन्हें एक ओर दुर्ग नजर आता था, तो दूसरी ओर बाजीप्रभु। वे सोच रहे थे—क्या हाल होगा मेरे बाजी का। मैंने उसे मौत की गली में छोड़कर दुर्ग की राह ली! स्वराज्य की खातिर मेरे साथियों ने कौन-सा



जाकर मृत्यु से कह दो—जब तक तोप की आवाज नहीं आती, बाजी मरेगा नहीं

बलिदान है जो नहीं दिया !

क्रोध से लाल हो वे चीख उठे—सुर्वे ! अब तेरा घेरा मुझे बाँधकर नहीं रख सकता । मुझे दुर्ग पर पहुँचने में अब और अधिक देर नहीं करनी है । मुझे पहुँचना ही होगा । बाजीप्रभु संकेत की प्रतीक्षा में न जाने क्या-क्या संकट अपनी जान पर झेल रहा है । मुझे जल्दी-से-जल्दी तोप दागनी है । सुर्वे ! तू तो क्या, अगर साक्षात् काल भी मेरे रास्ते में अड़ा तो मैं माँ भवानी की सौगन्ध खाता हूँ कि एक बार तो उसके भी तीन टुकड़े कर उसकी सीढ़ियाँ बना दुर्ग पर पहुँचूँगा ।

और सुर्वे का घेरा टूट गया । महाराज दुर्ग की ओर ऐसे लपके मानो माँ दुर्गा ने पुकारा है । पैरों में तो पवन की गति आ गयी हो ।

उधर बाजीप्रभु को चारों ओर घेर लिया गया । तलवारें खनखना रही थीं । युद्ध का कौन-सा कौशल बाजीप्रभु ने नहीं दिखाया । आश्चर्य यही था कि शरीर का कोई हिस्सा घाव-मुक्त न होने के बावजूद भी वह लड़े जा रहा था । साँस फूल रही थी । अचानक दो मुसलमान सैनिक निकट से वार करने को बढ़े । बाजीप्रभु ने सारी हिम्मत बटोर कर ललकारा—"मूर्खो ! बाजीप्रभु जब चाहेगा, तभी मरेगा, उससे पहले नहीं । पागलों की तरह तुम जब तक चाहो मेरे से टकराते रह सकते हो ।"

उधर अपने मुट्ठी भर बचे सैनिकों को उसने आशा बँधाई—खून की अन्तिम बूंद तक लड़ना मेरे वीरो ! मर जाओगे, तो भी मुझे गम नहीं होगा । मैं भी

आऊँगा, लेकिन वचन पूरा करने के बाद। मृत्यु से जाकर कह देना—

"तोप आधी मरे न बाजी,
सांगा मृत्यला।"
(जब तक तोप की आवाज नहीं आती, बाजी मरेगा नहीं।)

तभी जोर का धमाका हुआ—

धायं-धायं-धायं-धायं-धायं !

बाजी के मुखमण्डल पर कर्तव्यपूर्ति का आनन्द नाचने लगा और इसी आनन्द को उसके प्राण अपने दिवंगत साथियों में बाँटने चल पड़े। इधर बाजीप्रभु का निष्प्राण शरीर नीचे आ गिरा और उधर किले की प्राचीर पर शिवाजी महाराज की आँखों से अश्रु-धारा बह निकली।

कितना गौरवपूर्ण था बाजीप्रभु का बलिदान और कितनी पावन थी शिवाजी की अश्रुमय श्रद्धांजलि !

१८
पाँखर हमला

जिन दिनों महाराज शिवाजी पन्हालगढ़ किले में सिद्दी जौहर के घेरे में जकड़े थे, उन्हीं दिनों औरंगजेब का मामा शाइस्ताखाँ अपनी एक लाख की सेना लेकर पूना पहुँच गया। खास शिवाजी के लालमहल में आकर डट गया। मानो कालिन्दी में कालिया नाग घुस आया हो।

माता जीजावाई राजगढ़ किले पर चिन्तित थीं। १० नवम्बर, १६५६ के बाद से शिवाजी महाराज माताजी से मिले ही नहीं थे। क्या किया जाय, कुछ सूझता ही नहीं था।

एक दिन शाम को वे जा रही थीं। तेल का दीया कहीं हवा के क्रूर झोंकों से बुझ न जाय, इसलिये उसे आँचल में छुपा रखा था। तभी मन्दिर के द्वार पर सूचना मिली कि चाकण किला घेर लिया गया है। स्वराज्य का नन्हा दीया उमड़ते तूफान से बचाना था। यह एक दिये और तूफान की लड़ाई थी। माता जीजावाई की चिन्ता सौ गुना बढ़ गयी। करे तो क्या करे!

चाकण किला पूना से ७ कोस की दूरी पर खुले मैदान में ५ बीघा जमीन पर बनवाया हुआ पत्थर का एक किला था। चारों तरफ पत्थर की दीवार। सब दिशाओं में पक्के बुर्ज, बीच में बड़ा दरवाजा और दरवाजे के ऊपर फड़कता भगवा निशान। क़िले के बाहर खन्दक खोदी गयी थी और बाहर ८ फीट चौड़ी एक दीवार और बनवायी गयी थी। यह किला ऐसा लगता था मानो कोई पहलवान अपना शरीर समेटकर पालथी लगाकर हिम्मत से बैठा हो। प्रत्यक्ष 'भीमसेन' की बैठक ही थी वह।

शाइस्ताखाँ स्वयं ही कमान सम्भाल रहा था। २१ जून, १६६० को हमला शुरू हो गया। बड़ी हिम्मत से मुगल सैनिक एक ही धावे में किला हथियाने के इरादे से 'अल्ला हो अकबर' का नारा लगाकर दौड़ पड़े। किले के अन्दर से कुछ जवाब नहीं आया। मुगल सैनिक और तेजी से दौड़े। परन्तु जैसे ही वे तोपों की मार में पहुँचे, तो एकाएक तोपें चल पड़ीं। दौड़ रुक गयी। मुगलों को पता नहीं

था कि ऐसा भी होगा। वह दिन बेकार गया। लाखों की सेना में सैकड़ों सैनिक मर भी गये तो कौन-सी बड़ी बात थी ! पेट भरने को मुगल सेना में भर्ती हुए थे। मरते दम तक पेट भर खाया था। और क्या ?

अगले छ:-सात दिन तक ऐसा ही होता रहा। ऐसे हमलों से काम नहीं बनेगा, यह सोचकर चारों तरफ से हमला करके देखा। परन्तु कहीं पर भी ढील नहीं थी।

दस दिन के बाद मराठों ने रात का काम शुरू कर दिया। दिन में लड़ाई लड़ने के आदी मुगल रात को आराम में सोते थे। घेरा ४-५ महीने चले या कल समाप्त हो, रात क्यों हराम करें। पैर फटकार कर सोते थे। मराठे टोली बनाकर छापा मारते और भाग जाते। छापा मारते रात में। एक बार ही नहीं कई बार। वे अपनी बोली में ऐसे हमलों को 'पाँखर हमला' कहते थे। मतलब 'पंछी हमला'।

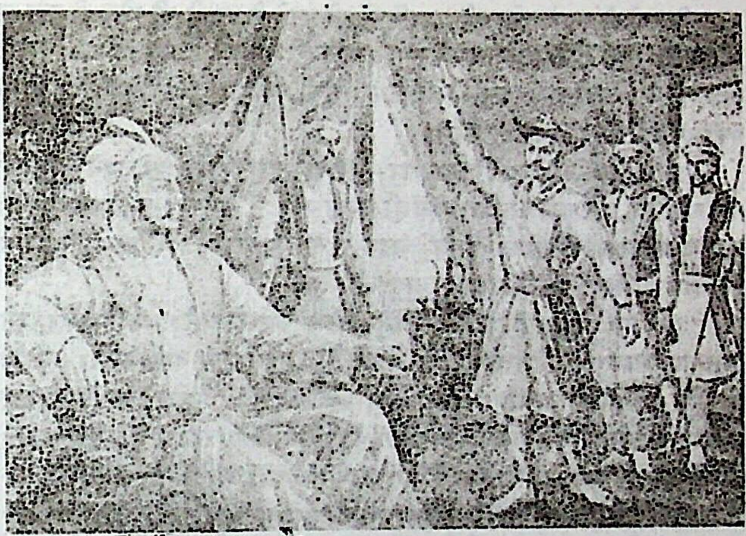
जैसे खड़े खेत में जब अन्न पककर बाहर आता है तभी पंछी जगह-जगह सारे खेत में छा जाते हैं। जो मिल गया खाकर उड़ गये। दूसरे खेतों में पुन: वही खेल। इकट्ठा आना और इकट्ठे उड़ना। रखवाला मारे तो किसको मारे ! निशाना लगाये तो कहाँ ! वह बैठा और उड़ गया। अनाज का नुकसान तो हो ही गया।

शाइस्ताखाँ को ऐसे हमले का अनुभव नहीं था। वह तो शाही लड़ने वाला, भारी सरदार, औरंगजेब का मामा था। क्या लड़ाई हुई ? आये, थोड़े से काटे और चले गये। परन्तु यही खेल शाइस्ताखाँ को परेशान कर रहा था। २५ दिन में भी कुछ हो ही नहीं पाया।

१४ जुलाई को खबर आयी कि शिवाजी महाराज पन्हालगढ़ से निकल गये हैं तो सब मुगल सैनिकों को लगा आज ही शिवाजी महाराज छावनी पर हमला करेंगे। बेचारे डर के मारे रातभर सो भी न सके।

शिवाजी विशालगढ़ पर पहुँचकर आगे की योजनाएँ सोच रहे थे, तो माता जीजाबाई का आशीर्वाद पहुँचा। आया हुआ पत्र माथे लगाया। माता जीजाबाई 'चिरंजीव' शिवाजी से मिलने को आतुर थीं। शिवाजी अफजलखाँ की हत्या के बाद माताजी से मिले नहीं थे। बाद में पन्हालगढ़ पर घेरे गये। दो बार मृत्यु के पंजे से सही सलामत छूटकर आये। 'मृत्युंजय' शिवाजी भी अपने पुत्र शम्भाजी को मिलना चाहते थे। अत: कुछ दिन के बाद राजगढ़ पहुँच ही गये। माता के चरण छुए, शम्भाजी को गले लगाया, सबका क्षेम पूछा और चाकण किले का हाल सुना।

चाकण का किलेदार फिरंगोजी नरसाला अपने चार सौ साथियों सहित अजगर के मुँह में फँसा था। बाहर से बीस हजार की मुगल सेना काटकर अन्दर जाना किसी के लिये भी कठिन था। कुछ सन्देश भेजना भी सम्भव नहीं था। परन्तु जब फिरंगोजी को पता लगा कि महाराज पन्हालगढ़ से निकल पड़े हैं और राजगढ़ पर पहुँचे हैं तो उसकी हिम्मत बढ़ गयी—महाराज संकट से बाहर हो



खाँ साहब ! हम स्वराज्य को धोखा देने वाले नहीं, नमकहरामी हमारा धर्म नहीं है।

गये हैं। अब आगे वही देखेंगे। हमारा काम तो मरते दम तक लड़ना और मरते-मरते मारना है।

शाइस्ताखाँ भी विचार में पड़ गया। यह जमीन पर स्थित किला, चार सौ आदमी अन्दर। हम बाहर बीस हजार और बीस दिन हो गये। किला जीता नहीं जाता। शिवाजी के पास तो पहाड़ी किले हैं और बड़े ही मजबूत। किले की ऊँचाई देखने लगो तो पगड़ी गिरती हैं। अब तो शिवाजी बाहर आ गये हैं। क्या शिवाजी को हराया जायेगा ? हिसाब लगाने लगा परन्तु हिसाब का कच्चा होने के कारण असफल रहा। हिसाब करना सीखा ही नहीं था।

उसने किला जीतने के लिये एक योजना बनायी। मुगल शिविर से किले तक अन्दर-ही-अन्दर एक सुरंग बनवायी। वह सुरंग किले तक पहुँची। किले के नीचे तक काम हो गया तो वहाँ बारूद भर दी गयी। दूर से डामर की बत्ती जोड़ दी गयी। १३ अगस्त को सुबह-सुबह बत्ती को आग लगा दी। थोड़े ही समय में किले की पूर्वी दिशा में धमाके की आवाज हुई। किले का वह हिस्सा हवा में उड़ गया। दिनांक १४ अगस्त को मुगल सैनिक ललकारकर सामने आये। मराठों को पता लग गया कि अब आखिरी लड़ाई है। वे भी जान हथेली पर रखकर सैनिकों की दीवार बाँधकर अड़ गये। मुगल सैनिक शाम तक अन्दर नहीं घुस पाये। रात वैसे ही कटी। दिनांक १५ को लड़ना बेकार था।

फिरंगोजी अपने बचे-खुचे आदमियों को मरने से बचाने की सोच ही रहा था कि उतने में खाँ साहब से सन्देश पहुँचा—"किला छोड़कर निकल जाओ।" मराठे निकल गये। अन्दर बन्दूक की गोली भी बाकी नहीं थी। तोपें भूखे पेट ऐसे ही पड़ी थीं जैसे जान निकली हुई हो।

शाइस्ताखाँ के मुँह से निकल पड़ा—"क्या बहादुर लोग हैं। लड़ने के पहिले क्या खाते हैं, पता नहीं। तोबा! ऐसे ही सब हैं क्या?" उसको एक विचार सूझा। उसने जाने वाले फिरंगोजी को बड़े आदर के साथ बुलाया। बड़े प्रेम से पूछताछ की और आखिर में अपने मन की बात कह दी—

"आप बड़े बहादुर हैं। आपके सैनिक तो बड़े कमाल के हैं। चने चबाकर रहने वाले आप सब लड़ने में इतने माहिर कैसे हैं? हमारी एक बात मानो। हमारी सेना में दाखिल हो जाओ। आपकी बड़ी इज्जत होगी। मुगल सेना में सरदार होना बड़े सम्मान का सूचक है। आप तो वैसे ही मँजे हुए लड़ाके हो, बहादुर हो। आपकी सिफारिश मैं औरंगजेब के पास करूँगा। क्यों, क्या विचार है?"

शाइस्ताखाँ ने तो फिरंगोजी नरसाला से चाकण किले पर ५५ दिन तक मात खायी थी। यदि सुरंग की योजना सफल न होती, तो और कुछ महीने शाइस्ताखाँ रोज सुबह-शाम शिवाजी महाराज के चाकण किले का दर्शन कर जीवनमुक्त हो जाता। परन्तु वह भी उसके नसीब में न था। अब तो फिरंगोजी स्वयं शाइस्ताखाँ के सामने अकेला ही खड़ा था। एक मुगल सरदार और एक शिवाजी का सरदार। दोनों में मानो द्वन्द्व हो रहा था।

फिरंगोजी ने तड़ाक से उत्तर दिया—"खाँ साहेब, आपको यह पता होना चाहिए कि हम शिवाजी महाराज के सैनिक हैं। हम स्वराज्य को धोखा देने वाले नहीं हैं। नमकहरामी हमारा धर्म नहीं है। यह मैं नहीं बोल रहा हूँ। यह तो समस्त शिवाजी के सैनिकों का प्रतिनिधि बोल रहा है। कहीं धोखे में न रहना। एक-एक सैनिक एक-एक चाकण किले जसा मजबूत और पक्का है।"

शाइस्ताखाँ देखता ही रह गया। किला जीतने का आनन्द उसे नहीं था। आखिर बीस हजार की फौज से ४०० की फौज को ५५ दिन में हराया था। वह भी अपने हजारों सैनिकों की जान गँवाकर। अब यह फिरंगोजी जो कह रहा है, उससे तो आगे लड़ने की हिम्मत ही नहीं हो सकती थी।

शिवाजी को जब पता लगा कि चाकण किला सुरंग लगने के कारण छोड़ना पड़ा है तो दुःख जरूर हुआ, परन्तु सैनिकों की बहादुरी तथा फिरंगोजी नरसाला के शाइस्ताखाँ को दिये जवाब को सुनकर वे फूले नहीं समाये—

"शाबाश, मेरे जवानो, शाबाश" कहकर फिरंगोजी को मिलने आने के लिये एक घुड़सवार भेज दिया।

१६
उचित पुरस्कार

पिछले कुछ महीनों की विपरीत परिस्थितियों में भी शिवाजी ने अद्भुत आत्मविश्वास और नीति कुशलता का जो परिचय दिया था, उसके कारण उनका यश स्वराज्य में ही नहीं बाहर भी सम्पूर्ण भारत में फैल गया। उनका शौर्य, युद्ध-कौशल एवं राष्ट्र के प्रति समर्पणभाव आदि गुणों के कारण जनता ने उन्हें अपने हृदय-सिंहासन पर स्थान दिया था। गाँव-गाँव और नगर-नगर उसकी चर्चा होती थी। परकीय आक्रमणकारियों ने सत्ता हथियाकर अत्याचारों की जो हाट सजायी थी, उसे तहस-नहस करने के लिये शिवाजी का अभ्युदय, जनता के लिये वरदान बनकर आया था। निराशा और अपमान भरे इस काल में शिवाजी का व्यक्तित्व एक अक्षय प्रेरणा-सूर्य बनकर लोगों की आँखों के सम्मुख उभर आया।

कवियों ने शिवाजी की प्रशंसा में रचनाएँ करना प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं गायकों में अज्ञानदास नामक चारण ने महाराज का यशोगान लिखा और गाँव-गाँव भ्रमण कर बड़ी तन्मयता से उसका काव्यगान करने लगा।

एक दिन माता जीजाबाई के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि शिवाजी के अनेक साथी भी अपनी जान हथेली पर रखे स्वराज्य के लिये अद्भुत त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनका उचित सम्मान होना चाहिए।

उन्होंने शिवाजी को अपना विचार बताते हुए कहा, "शिवबा! मेरी इच्छा है कि तुम अपने हाथ से अपने कुछ साथियों को पुरस्कृत कर उनके सहयोग और निःस्वार्थ सेवा-भाव को स्वीकृति दो।"

"माताजी! आपका यह विचार बड़ा ही श्रेष्ठ है। मैं शीघ्र ही कोई शुभ मुहूर्त निकलवाकर ऐसे कार्यक्रम का आयोजन करवाता हूँ," शिवाजी ने सहर्ष उत्तर दिया।

और कुछ ही दिन के बाद एक दिन यह कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में माता जीजाबाई ने अज्ञानदास को भी निमंत्रित करवाया। अज्ञानदास ने कविता-पाठ करते समय शिवाजी की उपमा राम से दी। जेधे तथा बादल को

रामसेवक हनुमान बताया। अज्ञानदास की वाणी इतनी मृदु एवं वर्णन इतना हृदयस्पर्शी था कि श्रोता आत्मविभोर हो गये। फलस्वरूप कार्यक्रम के अन्त में माता जीजाबाई ने उसे एक घोड़ा और एक सेर सोने का कंगन पुरस्कार के रूप में दिया।

तत्पश्चात् महाराज ने उन सभी वीरों का सत्कार किया जिन्होंने अपने रक्त से स्वराज्य-उत्कर्ष का इतिहास लिखा था। उन्हें मुक्तहस्त से उपहार दिये गये। किसी का सत्कार कड़े से हुआ, तो किसी का वस्त्रों से। किसी को कंठहार प्राप्त हुआ तो किसी अन्य को बाजूबन्द। कलगियाँ, तुर्रे, घोड़े, हाथी, पालकी इत्यादि उपहारस्वरूप दिये गये। सत्कार के समय महाराज का भाव यही रहा कि 'इतने से नहीं बनेगा, कुछ और देना चाहिए।' जो सैनिक युद्ध में काम आये थे उनके परिवारों को जीवन भर के लिये पर्याप्त दिया।

सत्कार समारोह के उपलक्ष में आयोजित सभा का ज्यों ही उपसंहार हुआ महाराज सिंहासन से उतरकर नीचे आये। रजतथाल से पान-सुपारी उठाकर कान्होजी जेधे की ओर दृष्टिपात किया। राज्य की ओर से सर्वश्रेष्ठ मान के प्रतीक के रूप में उन्हें खड्ग तथा पान-सुपारी प्रदान की गयीं।

सब मुदित थे। 'ऐसा राज होगा नहीं इतना गर्वरहित, उदार, दीनहीनों का आश्रयदाता ! राजा तो होगा ही नहीं', कहते हुए सभी विदा हुए। दरबार समाप्त हुआ।

जैसा सत्कार हुआ वैसा ही एक अन्य काम और था। ऐसे अधम भी थे जो अफजलखाँ से मिल गये थे। देश के प्रति द्रोह किया था। उदार शिवाजी ने कइयों को छोड़ दिया था। क्षमादान सीमा के भीतर शोभनीय है। किन्तु सीमा से अधिक हानिकारक होता है। इसकी चिन्ता भी महाराज को थी।

और एक प्रसंग ऐसा उपस्थित हुआ कि जिसके संदर्भ में इतिहास भी महाराज को विशिष्ट रूप में पाता है।

अफजलखाँ के वध के पश्चात् उसके सैनिक भाग खड़े हुए थे। अनजान प्रदेश में भटक गये। विशिष्ट व्यक्तियों में अफजलखाँ का बेटा फाजलखाँ भी था जो कि जंगल में फँस गया था। उसके साथ मूसेखाँ, याकूतखाँ आदि थे। इन सबका मार्गदर्शन खंडोजी खोपड़े देशमुख ने किया। यह खंडोजी अभी जीवित था। भय एवं ग्लानि के कारण कुछ काल जंगल में छिपा रहा। शिवाजी के राजगढ़ पहुँचने का समाचार सुनकर उसे अपनी मृत्यु निकट जान पड़ी। यह सोचकर कि शिवाजी महाराज कभी न कभी मुझे मृत्युदण्ड देंगे ही, वह रोहीढ़गढ़ क्षेत्र में स्थित अपने तीन गाँव उन्नवकी, माझरे, वाजार खाड़ी में से किसी न किसी में छिपकर रहने लगा। जीवित रहने की मनुष्य की इच्छा बड़ी प्रबल होती है। पाप का भार ढोते हुए भी वह जीवित रहना चाहता है। किन्तु खोपड़े का

अपयश इतना कुत्सित था कि दबे स्वर में सब ओर कानाफूसी होने लगी।

राजदण्ड मिलने से पूर्व ग्रामीण लोगों की ओर से ही उसे यातनापूर्ण दण्ड दिया जा सकता था। वे ही हिसाब चुका सकते थे। अत्यन्त अशोभनीय ढंग से उसका नाम लिया जाने लगा। मृत्यु के समान अपमान सहकर भी वह दिन-रात बच निकलने का मार्ग निकालने का विचार करने लगा।

एक दिन खोपड़े ने अपना एक विश्वासी आदमी अपने दामाद हैबतराव के, जो कि स्वराज्य की सेवा में शिवाजी के श्रेष्ठ सरदार थे, पास भेजा। हैबतराव अपने श्वसुर की काली करतूत से भली प्रकार परिचित थे। श्वसुर के लिये वे कुछ करें या न करें इस असमंजस में पड़ गये। किन्तु इस बीच खण्डोजी खोपड़े स्वयं पुत्री के घर जीवनदान की याचना करने चला आया। पुत्री के घर का जल भी ग्रहण करना अनुचित है। किन्तु स्वार्थरत खोपड़े समस्त मर्यादा को छोड़कर नतमस्तक होकर खड़ा था। उसने कहा, "मेरा विचार महाराज की शरण जाने का है।" हैबतराव के होश से उड़ गये। शिवाजी महाराज की रौद्र मुद्रा उनके सामने खड़ी हो गयी। मुख से एक शब्द न निकला।

महाराज के सम्मुख पहुँचकर खण्डोजी के लिये 'अभय' माँगना क्या कोई सरल बात थी? कपटी, देशद्रोही का शिवाजी के न्याय से बच निकलना सर्वथा कठिन था। हैबतराव के सामने धर्मसंकट खड़ा हो गया।

कुछ बोले नहीं। घर के भीतर जाकर कुछ संदेश देने के स्थान पर, घर से चल दिये तथा प्रतापगढ़ के निकट कान्होजी जेधे के निवास पर आकर रुके। हैबतराव का म्लान दुःखपूर्ण मुख देखकर कान्होजी आशंकित हो उठे। आने का कारण पूछने पर अश्रुपूर्ण नेत्रों से नतमस्तक हैबतराव अपने श्वसुर का पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर श्वसुर के प्राणों की रक्षा के लिए जेधे के प्रयत्नों की भीख माँगने लगा।

कान्होजी भी क्रोध में बरस पड़े, "लड़ाई में तो जिंदा निकल गया। अब नयी जिन्दगी चाहता है। सैंकड़ों हमारे सैनिक मारे गये—उसकी जिम्मेदारी किस की? फाजलखाँ शिकार हाथ से निकल गया। इसके बदले में अब आकर कहलवाता है, 'जीवनदान दो'। यह संभव नहीं। एक दिन वह अब महाराज के हाथ का वार खाकर मरेगा ही। बस मरेगा ही। दूसरा कुछ नहीं हो सकता।"

हैबतराव ने कहा "नाईक! महाराज आपका कहना मानेंगे। एक बार कह कर देखो। खण्डोजी को और उसकी जागीर को बचाकर यश प्राप्त करो तथा हमारे परिवार पर कृपा करो।"

चौबीस वर्षों से कान्होजी महाराज के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाते आ रहे थे। भोंसले कुल की उन्होंने अनन्य सेवा की थी। महाराज भी कान्होजी को पिता के समान मान देते थे। स्वराज्य के प्रथम मान प्राप्तकर्ता वही थे।

कान्होजी को हैवतराव को अप्रसन्न करना कठिन लगा। महाराज से मिलने के लिये वे निकल पड़े। राजगढ़ पहुँचे। मुखमुद्रा म्लान थी। सहज आभा लुप्त थी। महाराज के सामने गये। झुककर अभिवादन भी किया किन्तु शीश झुकाये हुए बिना दृष्टि उठाये मौन रह गये। महाराज ने सहज स्वभाव से पूछा, "नाईक, क्या बात है? प्रसन्न नहीं दीख रहे हो। सब कुशल तो हैं?" नाईक ने कुशलक्षेम स्वीकार किया और कहा, "खण्डोजी शरण आया है। अभय माँगता है। हैवतराव स्वयं आने वाले थे, किन्तु साहस न कर सके। मैंने सोचा अपना आदमी है, अभय मिले।"

सुनते ही महाराज आग-बबूला हो गये—"वह हरामखोर! उसके पास वतन (जागीर) नहीं था। वतन देकर उसका हमने सत्कार किया। तो भी नीच अफजलखाँ से मिल गया। हमसे वैर किया। हम पर शस्त्र चलाना चाहता था। और उसको अभय! उसके शरीर के चार टुकड़े कराकर चार दिशाओं में फेंके जायें, यही उसके बारे में हो सकता है। वह ऐसा ही आदमी है। उसके लिये अभय माँगने आप आये हैं? बड़ा आश्चर्य है। हम सहमत नहीं हैं।"

कान्होजी जाधव को पहले ही परिणाम का पता था किन्तु अपना काम पूरा कर वे जाने वाले ही थे कि एक बार पुनः विनीत स्वर में बोले—"महाराज! खण्डोजी का अपराध हमारा अपराध समझें। उसकी जान बख्शें।"

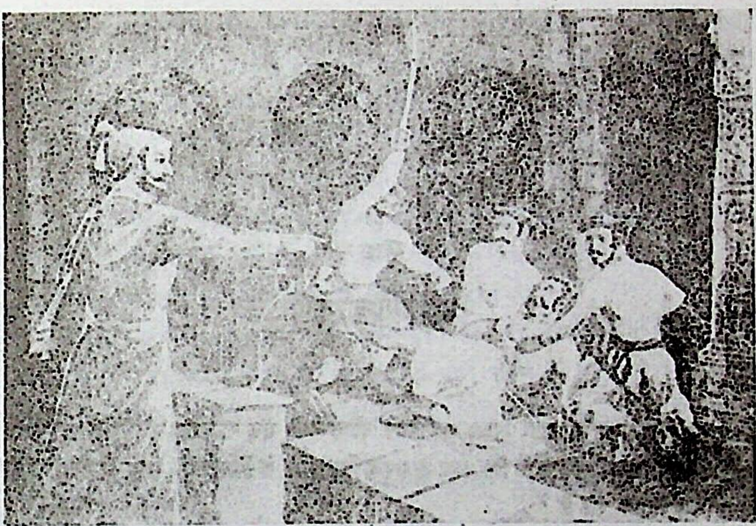
महाराज का क्रोध शान्त हो गया। नाईक जैसा प्रथम सम्मान का अधिकारी अपने ऊपर सब पाप लेने को तैयार है, यह देखकर कहने लगे—

"नाईक! आप कहते हैं तब हम विचार करने पर मजबूर हैं। हमने आपका कहना माना। वह जीवित रहेगा। खण्डोजी को हमारे पास ले आना।"

संदेश भेजा गया। खण्डोजी को बड़ा हर्ष हुआ। वह कान्होजी के पास आया। दोनों मिलकर दुर्ग में गये। महाराज को अभिवादन करने की उसकी लालसा थी। दरबार में दोनों ने अभिवादन किया। खण्डोजी महाराज की ओर देख न सका। महाराज भी कुछ बोले नहीं। दरबार समाप्त हुआ।

खण्डोजी प्रतिदिन दरबार में अभिवादन करने आने लगा। एक दिन उसे देखकर महाराज की आँखें लाल हो गयीं मानो नेत्रों से अंगार झड़ रहे हों। खण्डोजी काँप गया। पसीना छूटने लगा। शिवाजी का अन्तर्मन कह रहा था—'देश-द्रोही अदण्डित नहीं रहना चाहिए'। वे गरजकर बोले, "पकड़ो इस कम्बख्त को।" सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया। सब विचारशून्य। तुरन्त आज्ञा गूंज उठी, "दाहिना हाथ और बायाँ पैर काट दिया जाये।" दण्ड की घोषणा और अपराधी के चीत्कार से दुर्ग गूंज उठा। सब सहम गये।

हाथ और पैर काटे गये तथा दण्डित खण्डोजी को वहाँ से दूर कर दिया गया। दुर्ग के नीचे कान्होजी को पता चला तो वे क्रोध में भरे हुए ऊपर आये।



शिवाजी गरज उठे--"देश-द्रोही का हाथ और पैर काट दिया जाये।"

उन्हें लग रहा था कि यह उनका स्वयं का अपमान हुआ है। "यह कैसा न्याय ! दिया हुआ वचन पूरा न कर सके महाराज" शीघ्रता से खण्डोजी के पास पहुँचे। उसके घावों पर पट्टी बाँधी जा रही थी। तमतमाये हुए महाराज के पास गये। महाराज जानते थे कि कान्होजी पहुँचेंगे ही।

अभिवादन के पश्चात् कान्होजी बोले, "खण्डोजी को अभय देकर भी आपने दण्ड दिया। हमारे कहने का क्या सम्मान हुआ ?" महाराज ने मृदु स्वर में कहा, "आपके सम्मान के हित में ही खण्डोजी को मारा नहीं। जिस हाथ से तलवार पकड़ी थी, वह हाथ काटा और जिस पैर से अफजलखान की ओर गया, वह पैर काटा।" पुनः रौद्ररूप अनायास प्रकट करते हुए बोले, "अन्यथा चार टुकड़े कर चार दिशाओं में फेंकना यथोचित था। स्वराज्य में कपटी देशद्रोही को प्राणदान मिल नहीं सकता। प्राणदण्ड के बिना इस पाप का प्रायश्चित नहीं। जनता कहीं यह न समझे कि देशद्रोही भी इस राज्य में आनन्द से रह सकता है। स्वराज्य को ठीक ढंग से चलाने के लिये, इसे नष्ट से बचाने के लिये, अपराधी को उचित 'पुरस्कार' मिलना ही चाहिए।"

कान्होजी जाधव इस योग्य उत्तर से शान्त हो गये।

२०
आशीर्वाद

चार मराठा सरदार भाला चमकाते चौकन्ने से जब राजगढ़ में पहुंचे तो सर्व-दूर नगर में चर्चा चल पड़ी कि क्या सचमुच शिवाजी के पिता श्री शाहजी महाराज स्वराज्य में आ रहे हैं ?

"आदिलशाह से दूत आये हैं।"

"शाहजी का कोई संदेश लाये होंगे ?"

"छत्रपति शिवाजी की धाक से आदिलशाही हिल रही है। पन्हालगढ़ से सिद्दी जौहर के घेरे को लांघकर शिवाजी महाराज के रातोंरात निकल जाने की खबर से बीजापुर दरबार को पसीना आ गया। बेगम ने सोचा होगा कि शिवाजी को मनाना जरूरी है।"

"हाँ क्यों नहीं ! दिल्ली की मुगल सल्तनत बीजापुर पर झपट पड़ने को तैयार है। सोचा होगा कि शिवाजी से वैर रखना ठीक नहीं।"

"परन्तु भाई, शाहजी को स्वराज्य में आने का निमंत्रण तो शिवाजी ने ही भेजा है।"

"सो तो ठीक है। शिवाजी भी तो शत्रुओं के दिल की बात ठीक समय पर पहचान लेते हैं। शाहजी महाराज भले ही बीजापुर दरबार में सरदारी करते हैं, पर हैं तो शिवाजी के पिता। बरसों बीत गये शाहजी ने अपने पराक्रमी पुत्र को नहीं देखा। इस समय वे स्वयं स्वराज्य में आकर शिवाजी का अभिनन्दन करेंगे तो स्वराज्य की घोषणा सार्थक हो उठेगी।"

महल के दरवाज़े में घुड़सवारों का स्वागत हुआ। उन्हें तत्काल शिवाजी महाराज के सामने उपस्थित किया गया और महल के कंगूरों से प्रसन्नता की सूचना देने वाली तुरही गूंज उठी। स्वराज्य निवासी समझ गये कि सचमुच शाहजी महाराज आ रहे हैं।

यह बात फरवरी १६६१ की है। महाराष्ट्र में और विशेष कर पूना के निकट के इलाकों में शिवाजी महाराज के स्वराज्य संस्थापना के प्रयत्न कोई परदे के पीछे

की बात तो थी नहीं। बात जगजाहिर थी। शिवाजी को पकड़ने के लिये अफजल खाँ भेजा गया, तो शिवाजी ने दिनदहाड़े उसे मार डाला। उसकी विशाल फौज भी गाजर-मूली की तरह कट गयी। फिर सिद्दी जौहर को 'सलावतखाँ' का खिताब देकर भेजा गया। उसने पन्हालगढ़ में चार मास तक शिवाजी को घेरे रखा। परन्तु शिवाजी वहाँ से भी निकल आये। सलावतखाँ की ऐसी मिट्टी पलीत हुई कि बेचारा गम में ही मर गया। औरंगजेब का मामा शाइस्ता खाँ चाकण के किले पर घेरा डालकर दो मास तक जूझता रहा, पर सब बेकार। शिवाजी का स्वराज्य संस्थापना का कार्य ईश्वरीय प्रेरणा का कार्य था।

ये सब घटनाएँ अब दूर-दूर तक फैल चुकी थीं और शिवाजी द्वारा स्थापित स्वराज्य की असलियत को नकारना बड़ी से बड़ी सत्ता के लिए असंभव था। सहज ही शिवाजी के साथ शत्रुता और मित्रता दोनों के अब राजनीतिक अर्थ आँके जाने लगे थे। शाहजी अपने पुत्र की इन सफलताओं से आनंदित ही नहीं, अपने को गौरवान्वित भी महसूस करते थे। उन्होंने अच्छे, सच्चे और पक्के व्यक्तियों को समय-समय पर शिवाजी के पास भेजा था। शाहजी महाराज का वर्षों बाद स्वराज्य में आना हिन्दुपदपादशाही की स्थापना के राजनीतिक संदर्भ में कुछ विशेष महत्त्व की बात थी।

स्वराज्य में शाहजी के स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। स्वयं शिवाजी जीजामाता की आज्ञा से तैयारी में लगे। पुरोहितों को बुलाया गया। मंगलमुहूर्त निकाला गया। भेंट का स्थान भी निश्चित हुआ।

जेजुरी गाँव में खण्डोबा का एक विख्यात मंदिर है। वहीं भेंट निश्चित हुई थी। सम्पूर्ण गाँव तोरणों, पताकाओं से सजाया गया। स्वराज्य की सीमा पर बड़े-बड़े सेनापति और समाज के अगुआ व्यक्ति शाहजी महाराज के स्वागत के लिये तैनात हो गये।

शाहजी महाराज कर्नाटक से रवाना होकर जेजुरी की ओर बढ़ रहे थे। उनकी आँखों के सामने सम्पूर्ण विगत जीवन गुजर रहा था। उनका १६२९ का विद्रोह विफल होने के बाद जीजामाता को गर्भावस्था में ही छोड़ कर उन्हें भागना पड़ा था। तब से अब तक कितना बड़ा कालखण्ड गुजर चुका था। स्वराज्य स्थापना का उनका अधूरा सपना उनके पुत्र ने साकार कर दिखाया। स्वराज्य का उन्मुक्त वायुमण्डल उन्हें आल्हादित कर रहा था। शिवाजी महाराज की सहायता के लिये उनके द्वारा जो योद्धा, जो नीतिनिपुण व्यक्ति भेजे गये थे उनसे समय-समय पर शिवाजी महाराज के पराक्रम की यशोगाथा शाहजी महाराज के कानों में भी पहुँचती रही थी। वे सब कथानक उन्हें आज बरबस याद आ रहे थे। अपने पुत्र को अपनी आँखों से देखने की उनकी उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी।

ग्राम-ग्राम में, डगर-डगर में स्वागत समुहार ग्रहण करते शाहजी महाराज

की सवारी जेजुरी पहुँची। गाँव में मेला-सा लगा हुआ था। सैनिक, उनके परिवार और गाँवों के लोग रंगबिरंगे परिधान पहने एकत्रित थे। छावनी सजी हुई थी। मंदिर के सामने एक विशाल शामियाना लगाया गया था।

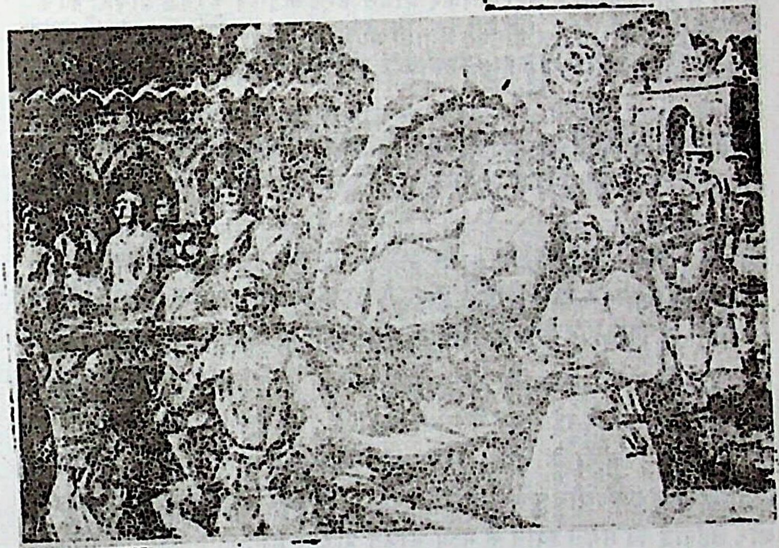
शाहजी महाराज के जेजुरी प्रवेश के साथ ही नेताजी पालकर अपने घुड़सवारों के दल के साथ आगे बढ़े और अगवानी की। सैनिक मानवन्दना दी गयी।

शाहजी महाराज का हाथी मंदिर के सामने पहुँचा, तो उन्हें सम्मानपूर्वक नीचे उतारा गया। वेदमंत्रों और मंगलगानों की ध्वनि के बीच शाहजी महाराज ने मंदिर की देहलीज पर अपना माथा टिकाया। वे मन्दिर के भीतर पहुँचे तो जीजामाता पहले से ही वहाँ उपस्थित थीं। प्रदीर्घ विरह के बाद पति-मिलन की आस लिये वे बैठी थीं। पुरोहित ने दोनों को साथ बिठाया, मंत्रोच्चार के साथ दोनों के हाथों से खण्डोबा की पूजा सम्पन्न करायी। भगवान को भोग लगाया गया। आरती हुई। प्रसाद वितरण हुआ। काजू, किशमिश, बादाम आदि सूखे मेवों से भरे थाल वितरित होने लगे।

पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार, इधर मंदिर में पूजा हो रही थी, उधर शिवाजी महाराज भी अपने पिता के दर्शन करने के लिये महल से निकल पड़े। साथ में साथियों का एक छोटा-सा दल था। नंगे पाँव, शिवाजी महाराज दल के आगे-आगे चल रहे थे। उनके पीछे हाथ में भगवा ध्वज लिये घुड़सवार था। साथ में कमर में तलवार बांधे कुछ सैनिक भी थे। इन्हीं के साथ भिन्न-भिन्न अलंकारों से सजे हाथी, घोड़े, आभूषणों और कीमती वस्त्रों के थाल लिये अनुचर भी थे। यह सब सामग्री शाहजी महाराज को भेंट देने के लिये थीं।

शिवाजी महाराज मंदिर के द्वार पर पहुँचे। उधर शाहजी मंदिर के भीतर से प्रवेश-द्वार पर आये। पिता-पुत्र की मिलन उत्कंठा अपनी चरम सीमा पर थी। किन्तु, आमने-सामने होने पर भी वे एक-दूसरे को अभी देख नहीं सकते थे। प्रत्यक्ष भेंट-पूर्व की विधि अभी शेष थी। पिता-पुत्र के बीच एक परदा लगा हुआ था। फिर भी शिवाजी महाराज अपने पिता के चरण अवश्य देख सकते थे, उनकी दृष्टि पितृ चरणों पर ही थी।

पिता-पुत्र के आमने-सामने आते ही घी से भरा एक थाल लाया गया। पुरोहितों ने उसे रेशमी परदे के नीचे रख दिया। फिर निर्देश दिया "महाराज घी में प्रतिबिम्ब देखें"। पिता-पुत्र ने एक-दूसरे का प्रतिबिम्ब देखा और इसके साथ ही तोपों की गर्जना, नगाड़ों, तुरहियों दुंदुभियों की ध्वनि के मध्य रेशमी परदा हट गया। पुत्र ने पिता के चरण स्पर्श किये। पुष्पवर्षा के बीच पिता ने अपने दोनों हाथों से पुत्र को उठाया और कसकर अंक में भर लिया। प्रेमाश्रुओं के साथ आलिंगन दिया। फिर हाथ जोड़े नतमस्तक खड़े पुत्र को पिता ने देखा तो आश्चर्य से देखते ही रह गये। पिता को अपनी ओर इस तरह निहारते हुए देख शिवाजी



शिवाजी ने पिता की जूतियाँ स्वयं अपने हाथों में उठा लीं और रास्ते-भर पालकी के साथ-साथ पैदल चलते रहे

ने विनम्रता के साथ पूछा, "क्या हुआ महाराज ?" शाहजी महाराज ने उत्तर दिया, "देख रहा था कि यही वह है जिसने सलामी में ही अफजलखान जैसे राक्षस को मार फेंक दिया।"

अभी तक जीजामाता ही शिवाजी के पराक्रमों का बखान करती थी, किन्तु आज प्रत्यक्ष पिता के मुख से पुत्र का गौरव हो रहा था। संकोच-मिश्रित आह्लाद से शिवाजी गद्‌गद हो गये। पिता ने पुत्र की पीठ थपथपायी।

पिता-पुत्र का मिलन हो रहा था। इसी बीच शिवाजी महाराज का पुत्र बाल शंभाजी भी दौड़ता हुआ पितामह के पास पहुँच गया। उसने भी झुककर चरण स्पर्श किये तो शाहजी महाराज की आँखों से आनन्दाश्रु छलक पड़े। उन्होंने उसे अपनी गोद में उठा लिया और सुडौल देह के राजसी बालक को चूमते ही रहे। बालक भी पितामह की गोद छोड़ने को तैयार नहीं था।

बाहर स्वराज्य के सैनिक, जनता और दरबारी शाहजी महाराज के दर्शन के लिये उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे थे।

पिता-पुत्र-पौत्र की भेंट पूर्ण हो चुकी तो तीनों जनता के सामने उपस्थित हुए। जनता ने अपने नयनों की प्यास बुझायी। इसके बाद अलंकारों, वस्त्रों का आदान-प्रदान, इत्र-गुलाल और पान-सुपारी हुई।

शिवाजी ने शाहजी को निवेदन किया कि वे राजभवन में पधारें। उपस्थित

लोगों से भी शिवाजी ने वहाँ चलकर भोजन करने के लिये करबद्ध प्रार्थना की।

शाहजी के लिये एक पालकी मँगायी गयी। मंगलवाद्यों के बीच उनकी शोभा-यात्रा चलने को तैयार हुई। जैसे ही शाहजी ने पालकी पर चढ़ने के लिये अपनी जूतियाँ उतारीं, शाहजी के नियत सेवक जूतियाँ लेने के लिये आगे बढ़े। परन्तु यह क्या! अपने पिताजी की जूतियाँ आज स्वयं शिवाजी ने उठायीं। सेवक देखते ही रह गये और उपस्थित समुदाय अपने महाराज की इस विनम्रता को देखकर गद्गद हो गया। जिस मस्तक को बड़ी-बड़ी सल्तनतें झुकाने में असफल रहीं, वही आज पिताजी की चरण-धूलि जनसमूह के सम्मुख धारण कर रहा था। शिवाजी ने इशारा किया। शाहजी कुछ कहें इसके पहले ही पालकी चल पड़ी और शिवाजी पूरे रास्ते पालकी के साथ पैदल ही जूतियाँ हाथों में लिये चलते रहे। पुत्र द्वारा किया गया पिता का यह स्वागत अनोखा था। शिवाजी अपने आचरण से मानो घोषणा कर रहे थे कि वे योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं!

प्रासाद में चाँदी के थाल, प्याले और कटोरियाँ लगी हुई थीं। बीच में पितामह तथा एक ओर पुत्र तो दूसरी ओर पौत्र विराजमान हुए। मंत्रोच्चार और शहनाई की मंगल ध्वनि के मध्य भोजन प्रारम्भ हुआ।

भोजनोपरान्त शिवाजी सुगन्धित फूलों का एक गजरा लिये पिता के पास पहुँचे तो उन्होंने अपना हाथ आगे कर दिया। गजरा बाँधते समय शिवाजी महाराज के नेत्रों से टपकी आँसू की बूँद शाहजी महाराज के मणिबन्ध पर जा गिरी। शाहजी महाराज ने व्याकुल होकर पूछा—"क्या बात है?" पुत्र ने कहा—"ये वही हाथ हैं जिनको बाजी घोरपड़े ने जंजीरों में जकड़ दिया था। मेरे कारण आपको कारावास सहन करना पड़ा था। क्षमा चाहता हूँ। अब यह फूलों का गजरा स्वीकार कीजिए।" यह दृश्य पूरी सभा के हृदय को छू गया। सभा स्तब्ध रह गयी।

शाहजी महाराज ने पुत्र को धैर्य देते हुए कहा—"यह शोक का अवसर नहीं है और न उस समय ही कोई शोक था। और यदि सोचना ही हो तो इसी ढंग से सोचना चाहिए कि तुम्हारे कारण सुलतान को जो पराजय का मुँह देखना पड़ रहा था, उसी का वह प्रतीक था। हमने वह जंजीर बड़े उत्साह से स्वीकार की थी क्योंकि वह आपके पराक्रम का परिणाम थी, न कि दुर्बलता का। हमें उस पर गर्व था।"

रात को काव्य गायन हुआ। कवि अज्ञानदास ने शिवाजी के यश की गाथा गायी। शाहजी खुश हो गये। उन्होंने अज्ञानदास को अपने पास बुलाया और हीरों की माला उसके गले में डाल दी।

दूसरे दिन दरबार लगा। सब अपने-अपने स्थान पर विराजमान हो गये। पहरेदार ने ललकार लगायी—"महाराजाधिराज राजराजे शाहजी पधार रहे हैं।"

सारा दरबार सतर्क हो गया। आगे-आगे शाहजी महाराज, उनके पीछे शिवाजी महाराज और साथ में शम्भाजी आ रहे थे। उनके प्रवेश के साथ ही सारा दरबार खड़ा हो गया। तीनों ने अपने-अपने स्थान ग्रहण किये। मान-सम्मान हुआ।

पिता-पुत्र १५-२० दिन साथ-साथ रहे। राजनीति पर विचार-विमर्श हुआ। कहा जाता है कि इसी विचार-विमर्श में शाहजी ने रायगढ़ को राजधानी बनाने का सुझाव दिया।

शिवाजी को यशस्वी होने का आशीर्वाद दे, शाहजी पुनः बंगलोर की ओर रवाना हुए। शिवाजी तथा जीजाबाई ने उन्हें अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदाई दी।

उस समय किसे पता था कि यह उनका अन्तिम आशीर्वाद होगा।

२१

तुकाराम के चरणों में

विधर्मियों द्वारा केवल मन्दिर और मूर्तियाँ ही नहीं तोड़ी गयी थीं अपितु सम्पूर्ण भारत उनकी धर्मान्धता का कई प्रकार से शिकार हुआ था। सन्त-महात्माओं का उत्पीड़न और भजन-कीर्तन तक में बाधा डालना भी इन क्रूर शासकों के धार्मिक जनून का एक प्रमाण था। परन्तु स्वराज्य के विस्तार और प्रभाव के साथ-साथ दक्षिण भारत में धार्मिक अनुष्ठान पुनः प्रारम्भ हो गये। सन्त पुरुषों को शिवाजी के रूप में अपना रक्षक दिखाई देने लगा था और वे फिर से निर्भीक हो एक स्थान से दूसरे स्थान पर ईश्वर महिमा का गान करते हुए भ्रमण करने लगे।

एक दिन शिवाजी पुरन्दर के किले के प्रांगण में घूम रहे थे कि समाचार मिला—सन्त तुकाराम देहू पधारे हैं और प्रतिदिन हजारों श्रद्धालु-जन उनके भजन सुनकर धर्म-गंगा में अवगाहन कर रहे हैं।

"सन्त तुकाराम पधारे हैं। तब तो देहू की धरती पवित्र है। वहीं जाना चाहिए। उनके भक्ति-गीत सुनकर लोग आत्मविभोर हो उठते हैं। बोलते हैं, तो लगता है अमृतवर्षा हो रही हो। उनकी वाणी में चुम्बक जैसी शक्ति है। जिसके कान में भी शब्द पड़ते हैं जादू के जोर से खिंचा चला आता है। हम उनके दर्शनों से वंचित रह गये तो हमारा बड़ा भारी दुर्भाग्य होगा। जाइए, और नेताजी से कहिए कि हमारी इच्छा तुकाराम जी के दर्शन करने के लिये देहू जाने की है। प्रस्थान की सब तैयारियाँ पूरी कर लें।" कहते-कहते शिवाजी स्वयं में खो से गये। सन्त पुरुषों के प्रति उनका आदरभाव ही ऐसा प्रबल था।

अगले दिन अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ शिवाजी ने देहू के लिये प्रस्थान किया। तानाजी, येसाजी, नेताजी और हीरोजी फरजन्द उसमें प्रमुख थे।

जिस समय ये देहू पहुँचे, दिन छिप चुका था और घरों में दीपक टिमटिमाने लगे थे। बाजार से गुजरते आखिर ये उस मन्दिर के बाहर जा पहुँचे जहाँ सन्त तुकाराम आत्मविभोर हो भजन गा रहे थे।

मन्दिर दीपों के प्रकाश में जगमगा रहा था और आँगन भक्तजनों से ठसाठस भरा था। तुकाराम जी की मधुर वाणी सुनकर लोग स्वयं को भूल भगवद्भक्ति में लीन हो गये थे।

दीवार के पास से धीरे-धीरे रास्ता बनाते हुए शिवाजी तुकारामजी के सम्मुख ही जाकर बैठ गये और भजन सुनने लगे। उनके अन्य साथी भी इधर-उधर खड़े हो गये।

सन्त तुकाराम आँखें बन्द किये तल्लीन भाव से गीत गाते रहे। कितनी मधुर वाणी! कितना आकर्षण! शिवाजी गर्दन ऊँची किये सन्त के चेहरे पर व्याप्त दैवी आभा को देखते रहे और समय गुजरता रहा। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा भजन। लगता था न सन्त तुकाराम गाना बन्द करेंगे और न ही कभी भक्तों का मन तृप्त होगा।

अचानक मन्दिर के द्वार पर कुछ हलचल हुई। अन्दर बैठे लोगों में भी घबराहट की लहर दौड़ी। वातावरण में तनाव-सा भर गया। सन्त तुकाराम की एकाग्रता भी भंग हो गयी। उन्होंने आँखें खोलीं तो शिवाजी सामने दिखाई दिये। दोनों की आँखों में प्रसन्नता छलक आयी। एक क्षण के लिए दो दिव्य-आत्माएँ एक हो गयीं।

तभी किसी ने घबराहट भरे स्वर से तुकाराम जी से कहा—"महाराज! मुस्लिम सूबेदार शिवाजी राजे को पकड़ने के उद्देश्य से मन्दिर के द्वार पर आ पहुँचा है।"

"सन्त शिरोमणि! आप हमारी तनिक भी चिन्ता न करें और अपना दैवी भजन निडर होकर गाते रहें।" शिवाजी ने करबद्ध हो सन्त तुकाराम से धीरे से निवेदन किया।

तुकाराम जी का भजन पुनः प्रारम्भ हो गया। धीरे-धीरे वे फिर आत्म-विभोर हो गये और श्रोतागण भी शान्त हो सुनने में लीन हो गये।

अब शिवाजी ने अपने साथियों की ओर देखा। वे तो पहले से ही एकटक हो शिवाजी की ओर देख रहे थे।

धीरे से शिवाजी अपने स्थान से उठे और मन्दिर की वेदी के पीछे पहुँच गये। उनके साथी पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे। आपस में कुछ सलाह-मशवरा किया और फिर सब वहीं आँगन की तरफ को आ गये।

अचानक लोगों ने देखा कि शिवाजी और उनके कुछ साथी तेजी से मन्दिर के मुख्य द्वार पर पहुँचे और पलक झपकते ही अपने घोड़ों पर सवार हो निकल भागे। उन्हीं के पीछे-पीछे अपनी टुकड़ी सहित भागा सूबेदार।

"भागो! जल्दी करो! देखो वहाँ, उधर! वह ऊँची पगड़ी वाला। वही शिवाजी है। घोड़ों को एड़ लगाओ। निकलने न पाये," सूबेदार चिल्ला-चिल्ला-

कर अपने सैनिकों को उत्साहित कर रहा था।

इसी शोर-शराबे में सन्त तुकाराम की आँख एक बार पुनः खुलीं। सामने बैठे लोगों पर नजर पड़ी तो देखा कि शिवाजी तो नहीं हैं। उनके स्थान पर हीरोजी फरजंद बैठा है। तुकाराम को यह पहेली-सी लगी।

हीरोजी फरजंद के चेहरे पर मुस्कराहट की रेखाएँ खिचीं तो तुकाराम की समझ में सारा भेद आ गया। वे भी अपनी मुस्कराहट न रोक सके।

असल में स्वयं शिवाजी ही हीरोजी फरजंद के कपड़े पहने बैठे थे। बिल्कुल हू-ब-हू मावला सरदार लग रहे थे।

शिवाजी और हीरोजी फरजंद के आकार-प्रकार में बड़ी भारी समानता थी। दोनों की आँखों में वैसी ही चमक और दोनों का ही छोटा कद।

जिस समय हीरोजी ने शिवाजी के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा था तो शिवाजी ने ऐसा करने से मना कर दिया था। वे अपने एक साथी का जीवन खतरे में नहीं डालना चाहते थे। परन्तु अन्य साथियों के आग्रह के सामने उनकी एक न चली और उन्हें हीरोजी के कपड़े स्वयं पहनने पड़े। हीरोजी ने जैसे ही शिवाजी के कपड़े धारण किये तो कहा था, "महाराज! इस धृष्टता के लिये क्षमा करना। आपकी पगड़ी और मैं! क्या करूँ कर्तव्य की रस्सियों से बँधा हूँ।"

वेदी से बाहर निकलते हुए शिवाजी ने उत्तर दिया था, "नहीं, हीरोजी ऐसा मत कहो। बस इतना वचन दो कि सूबेदार के हाथ नहीं पड़ोगे।"

"आप निश्चिन्त रहें, महाराज! सूबेदार हमें तो क्या हमारी छाया को भी नहीं छू पायेगा।"

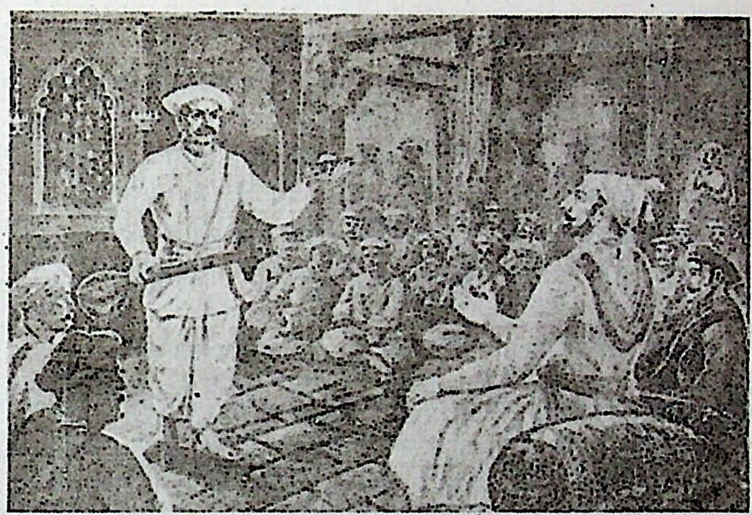
तुकाराम का भजन पूर्ववत् चलता रहा और शिवाजी राजे भी पहले की तरह ही तन्मय हो सुनते रहे।

उधर मराठा सरदार घोड़ों पर हवा से बातें करते अँधेरे में गायब हो गये। सूबेदार जब उनकी परछाईं न पकड़ सका तो झल्लाकर अपने सैनिकों से बोला—"इसका नाश हो, कम्बख्त हाथ से निकल गया। यह शिवाजी का बच्चा आदमी नहीं शैतान है। बार-बार निकल भागता है। चलो, वापिस चलें इस अँधेरी रात में कहाँ टक्कर मारें!"

और अपने सैनिकों के साथ मुँह लटकाये वह वापिस लौट गया।

रात के अँधेरे में ही मराठा घुड़सवार पुरन्दर के किले पर सुरक्षित पहुँच गये। माता जीजीबाई के पास पहुँचकर हीरोजी फरजन्द ने उन्हें प्रणाम किया तो एक बार तो वे भी न पहचान पायीं। जब पहचाना तो उनकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं—"तुम लोग भी कमाल करते हो। भला स्वराज्य के विस्तार को कौन रोक सकता है।"

"माँ साहिब," हीरोजी ने उठते हुए कहा, "आप मुझे क्षमा करना। जिस



संत तुकाराम ने आँखें खोलीं तो शिवाजी सामने दिखाई दिये, एक क्षण के लिये दो दिव्य आत्माएँ एक हो गयीं।

पगड़ी के सामने हम सिर झुकाते हैं, वह पगड़ी आज मैंने अपने सिर पर रखने की गुस्ताखी की है।"

"स्वराज्य की इन भयानक राहों पर बार-बार ऐसी स्थितियाँ पैदा होंगी। बार-बार तुम्हें ऐसा ही करना पड़ेगा। मेरी ही क्यों ईश्वर की आज्ञा है तुम अपने प्रयत्नों में सदा सफल रहो। यह क्षमा माँगने की नहीं, गर्व करने की बात है" जीजाबाई ने अपना आशीर्वाद दिया।

लगभग इसी समय पूना में तुकाराम जी का भजन-कीर्तन समाप्त हुआ तो शिवाजी ने उन्हें प्रणाम किया और बोले, "महाराज! मुझे आशीर्वाद दीजिये—मैं सदा आप जैसे श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा करता रहूँ। धर्म के संरक्षण और स्वराज्य स्थापना के लिए दुष्टों का दलन करता रहूँ। कभी भी ध्येय-पथ से विचलित ना होऊँ।"

"राजे! आपका उद्देश्य पवित्र है और लक्ष्य महान्। ऐसे व्यक्ति के मार्ग में आने वाली लौह चट्टानें भी ईश्वर के प्रताप से वर्फ के समान गल जाती हैं। भगवान आपको यश और कीर्ति प्रदान करें" कहते हुए तुकाराम जी ने शिवाजी को बाँहों में भर लिया।

शिवाजी का चेहरा एक नयी आभा से आलोकित हो उठा। आज उनकी प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। तुकाराम जैसे सन्त से, जिनकी वाणी सुनकर लोग

स्वयं को भूल जाते थे, आज उन्हें आशीर्वाद मिला था।

ये वही सन्त तुकाराम थे जिन्होंने बाद में अपने शरीर-त्याग से पूर्व मराठी का निम्न अमर पद गाया था—

शेवटची विनवणी।	आता फार बोलों कायी।
संतजनी परिसावी ।।	अवघे पायीं विदित ।।
विसर तो न पडावा।	तुका म्हणे पडतो पाया।
माझा देवा तुम्हासी ।।	करा छाया कृपेची ।।

(अन्तिम यह प्रार्थना	अधिक और क्या कहूँ
सन्त जन सुनें सभी।	श्रीचरणों को ज्ञात ही।
देव! हो न विस्मरण	तुका कहे पैरों पड़ूँ
आपको मेरा कभी।	छाँह करें कृपा की।)

२२

उम्बर दर्रा

चाकण दुर्ग पर विजय प्राप्त करके शाइस्ताखाँ बड़ा प्रसन्न हुआ। पावस ऋतु अपने यौवन पर थी। भारी वर्षा इस क्षेत्र के उड़ते पंछियों पर भी काई जमा देती है। अत: शाइस्ताखाँ वर्षा ऋतु के अवसान की प्रतीक्षा करता रहा।

शिवाजी महाराज तो वर्षा का सहर्ष स्वागत कर रहे थे। वर्षा से ही धरती अन्न उगलने वाली थी। किसान अपने-अपने खेतों में कर्मरत थे। अगली विजय-योजना पावस के अन्त तक पूर्ण होकर प्रगट होने वाली थी।

शिवाजी के अधीन पहाड़ी दुर्गों को हस्तगत करना दूभर कार्य है, यह सोचकर शाइस्ताखाँ ने समुद्र तट पर आक्रमण करने की योजना बनायी। किन्तु योजना के सम्भव परिणामों का विचार किये बिना ही उसकी साधना में जुट गया। महाराष्ट्र में पहले से ही नियुक्त तथा शाहजी महाराज का समवयस्क व अनुभवी, उज़्बेग खानदान का करतलबखान, उसकी आज्ञा से समुद्र तटवर्ती प्रदेश कोंकण को विजय करने के लिये सेना लेकर निकल पड़ा।

तटवर्ती प्रदेश पर आक्रमण का अर्थ था सह्याद्रि के शिखर को लाँघकर नीचे उतरना। विशालकाय मुगल सेना का तोपों के साथ सँकरी एवं ऊँची-ऊँची घाटियों से निकलना मानो बन्दूक की नली में से होकर जाना था। लम्बे रास्ते पर एक के पीछे एक सैनिक को चलना पड़ता था।

करतलबखाँ के साथ अन्य अनेक सरदार भी शिवाजी के विरुद्ध युद्ध अभियान पर थे। संकीर्ण घाटी और रास्ते को देखकर वे शंकित हो गये, परन्तु बोले नहीं।

वे जानते थे कि घाटी अन्न-जल से शून्य, अनजान रास्तों से भरपूर होने के साथ-साथ अभ्यास विहीन सैनिकों के लिये दुर्गम है। किन्तु करते क्या? चुप सबसे भली।

घने जटिल जंगल के मध्य में सैनिक प्रकृति की भयानकता से व्याकुल हो उठे। ऐसी परिस्थिति का लाभ उठाना ही शिवाजी की विशेषता थी। इस युद्ध की रचना सेनापति नेताजी पालकर ने की। करतलबखाँ तो सोच रहा था कि कोंकण की ओर बढ़ती मुगल सेना के अजगर को कोई रोकने वाला नहीं। सामने

कोई दिखता ही नहीं था। उसे विश्वास था कि उसकी कोंकण आक्रमण की योजना से शिवाजी अनभिज्ञ हैं। उसके मन में कहीं भी संशय का स्थान न था।

किन्तु शिवाजी के गुप्तचर चौवीसों घण्टे घड़ी की सुई की भाँति काम कर रहे थे। चप्पे-चप्पे की स्थिति की जानकारी गुप्तचरों के माध्यम से महाराज को थी।

कोंकण की ओर करतलवखाँ बढ़ रहा है, यह जानकर शिवाजी समझ गये कि शिकार घर में ही आ रहा है। उम्बर दर्रा में बड़े अजगर को मारने की योजना बनी। सैकड़ों सैनिकों ने सँकरे रास्ते के आसपास अपने अड्डे बना लिये। हाथ तैयार थे, हथियार तैयार थे, केवल शिकार की ही देर थी।

खान की सेना एक घुमावदार मोड़ पर पहुँचकर साँस लेने वाली थी कि एकाएक तुरही की आवाज हुई, नगाड़े वजने लगे तथा पानी के बदले तीरों की बौछार आकाश से होने लगी। आगे बढ़ने का मार्ग वन्द हो गया। केवल खुदा की ओर जाने का ही मार्ग खुला हुआ था।

कुछ उपाय सूझ न पड़ा। तोपें दागी जायें तो किस ओर ? अत: उन्हें वैसे ही रखना पड़ा। प्रत्येक सैनिक कहीं छुपने के लिये स्थान की खोज करने लगा। किन्तु मरने के सिवाय कोई चारा न था।

शर-वर्षा समाप्त हुई, तो खड्गधारी सैनिक मुगलों का सफाया करने लगे। शत्रुदल को मूली की भाँति काटा गया। थककर चूर हो गये, किन्तु रुकने का काम नहीं।

इधर करतलवखाँ चिल्ला-चिल्लाकर अपने सैनिकों को ढाँढस बँधा रहा था। किन्तु सैनिक हताश हो चुके थे। ऐसी दुर्दशा देख आखिर एक सरदार से न रहा गया। वड़े स्पष्ट शब्दों में खान को उसने सम्बोधित कर कहा—

"खाँ साहव! आपने बड़ी भूल की कि शिवाजी जैसे सिंह के घर में घुस आये। इतनी वड़ी सेना को मरने हेतु यहाँ लाये हो। क्या अभी तक भी आप जान नहीं पाये कि आप कुछ नहीं कर सकते ? मूर्ख शाइस्ताखान ने आपको यहाँ मृत्यु के पिंजरे में भेजा है। यह ठीक है कि किंचित् यश की आशा में पुरुष को साहस कार्य में जुटना चाहिए। किन्तु व्यर्थ में तो साहस उपहास का ही कारण वनता है। सेनापति का युद्ध में पराजित होना मृत्यु के समान है, किन्तु अव हमारे सम्मुख एक ही उपाय है। सुना है शिवाजी वड़े उदार हैं। अत: उनकी शरण में जाना उचित है।"

शरण या मरण ? शरण की वेदना मरण से कई गुना अधिक होती है, यह जानकर भी खान मरने को तैयार न था, अत: शरण में जाने को तत्पर हो गया।

एक योग्य वकील को दूत के रूप में भेजा गया। 'सुलह का पैगाम' लिये खान का दूत रास्ता निकालता हुआ महाराज की ओर बढ़ने लगा। दूर से अश्वारोही शिवाजी दृष्टिगोचर हुए।

लौह कवच धारण किये हुए शिवाजी शिरस्त्राण एवं जालीदार कंठकवच के



महाराज के एक ही संकेत पर सब यंत्रवत् खड़े हो गये, युद्ध रुक गया।

साथ सुसज्जित थे। कटि में खड्ग, कंधे पर धनुप-वाण साधे पैनी आँखों से निहार रहे थे। अपना श्वेत रुमाल हिलाते-हिलाते तथा "मैं खान का वकील आया हूँ" कहता हुआ वह मुगल सैनिक आगे बढ़ा। महाराज का संकेत पाकर सैनिक दूत को सम्मुख ले आये।

बड़े अदव से वह हाथ फैलाकर बोला, "महाराज! आपके मुल्क में हम आपकी इजाजत के बिना चले आये हैं। इसके लिये खानसाहव बड़े शर्मिन्दा हैं। महाराज की मेहरनजर हो तो हम अपने रास्ते से निकल जायें। हम आपसे दया की याचना करते हैं।"

खान के वकील (दूत) ने अधिक चापलूमी से काम लेते हुए कहा, "शाहजी राजे करतलवखान के जाने-पहचाने हैं। उनका खान साहव से बड़ा प्रेम है। शाइस्ताखाँ के गलत हुक्म से यह गुस्ताखी हुई है। इसके लिये हम सब क्षमा-याचक हैं।"

महाराज वोले, "क्षमा की वात तो ठीक है, परन्तु सेना तभी जा सकेगी जवकि क्षतिपूर्ति के रूप में सम्पूर्ण धन, कीमती चीजें, अनाज, शस्त्र-सामान हमें सौंप दिये जायेंगे।"

दूत लौटा। खान को स्थिति समझायी। निराश खान ने सव कुछ स्वीकार कर लिया। महाराज के एक ही संकेत पर सव सैनिक यंत्रवत् खड़े हो गये। युद्ध रुक गया।

खान का वकील बड़ा भारी धन लेकर शिवाजी के पास आया और सब कुछ उन्हें अर्पण कर दिया। जंगल का मार्ग पार न कर सकने के कारण अन्य सामान भी वहीं छोड़कर खान सेना समेत लौट गया। लग रहा था मानो श्मशान से लोग लौट रहे हों।

इधर शिवाजी के सैनिक जंगल में मंगल मना रहे थे। विजयश्री प्राप्त की थी। वायु की गति से यह समाचार दिल्लीपति औरंगजेब तक भी पहुँच गया कि उसके मामा शाइस्ताखाँ का सरदार करतबलखान शिवाजी की सेना से दिन-दहाड़े पराजित हुआ है। भुगतान के रूप में समस्त युद्ध-सामग्री देकर छुटकारा प्राप्त किया। शिवाजी ने करतलबखान को प्राणदान दिया। दक्षिण के मुगल सैनिक इस हार से मुरझाये हैं।

इस युद्ध की व्यूहरचना नेताजी पालकर ने बनायी थी। यह उसी की युद्ध-कला का परिणाम था। इसी कारण उसका नाम शिवाजी के नाम के साथ महाराज के दाहिने हाथ के रूप में जोड़ा जाने लगा।

उम्बर दर्रा इठलाते हुए गजापुर दर्रे को मानो कह रहा था—"तू नरवीर बाजीप्रभु देशपाण्डे की रक्षा न कर सका, लेकिन देख, मैंने शिवाजी की केवल रक्षा ही नहीं की, वरन् उन्हें पूर्ण विजय भी दिलायी है।"

२३

सच्चे हीरे-मोती

उम्बर दर्रा में करतलबखाँ को चारों खाने चित्त कर महाराज शिवाजी ने मुगल फौज की हिम्मत ही पस्त कर दी। महाराज विजयी हुए। करतलबखाँ तो कोंकण (समुद्री तटवर्ती प्रदेश) जीतने निकला था परन्तु उसका घोड़ा और उसकी किस्मत पलटा खा गयी और उसे वापिस पूना की ओर जाना पड़ा।

अब शिवाजी महाराज बीजापुर के क्षेत्र में दिनांक २ फरवरी, १६६१ को प्रविष्ट होकर अपने चार हजार जवानों के साथ घाटी में उतरे। नेताजी पालकर को उम्बर दर्रा में ही छोड़ दिया। क्योंकि मुगल बड़े गर्वीले होने के कारण एक बार पुनः पलटकर आ सकते थे। पहली गलती फिर से कर सकते थे। हमारे से गलती न हो, इसलिये नेताजी को वहीं रख दिया। सेना को आराम भी तो मिलना जरूरी था।

बीजापुर के सरदार अफजलखाँ और सिद्दी जौहर को शिवाजी को पराजित करने के लिये भेजने के बाद बड़ी साहिबन तो हिम्मत हार गयी थीं। अब बारी शिवाजी महाराज की थी। वही आदिलशाही रियासत से हिसाब पूरा करने पहुँचे। यह सुनकर सब शाही थानेदार तो अपना-अपना निजी सामान समेटकर भाग निकले। महाराज की तलवार म्यान से निकलने के पहले ही यह यश मिलने लगा। आम जनता पिछले साढ़े तीन सौ वर्षों से हर साल अनाज बोती थी किन्तु फसल कभी बीजापुर वाले, कभी अंग्रेज़, कभी पुर्तगीज, कभी अरब-हब्शी काट लेते थे।

अब तो अपना राजा आया है ऐसा समझकर सारी जनता शिवाजी महाराज का स्वागत करने लगी। उन्हें तो प्रत्यक्ष ईश्वर के दर्शन हो रहे थे। घर-घर दीपावली मनायी जा रही थी। भूमि पुनः पावन हो गयी।

महाराज जब 'दामोल' नाम के गाँव पहुँचे तब एक आदमी की बड़ी दयनीय अवस्था हो गयी। वह था जसवन्तराव दलवी। यह वही था जो विशालगढ़ किले का घेरा डाले महाराज के विरुद्ध लड़ रहा था। वह बड़ा घबराया। महाराज के

आते ही वह शृंगारपुर के सूर्यराव सूर्वे के पास आश्रय के लिये पहुँचा। साथी मिल गया तो सूर्यराव भी महाराज शिवाजी से लड़ाई की तैयारी करने लगा। महाराज ने उससे लड़ने का विचार छोड़कर चिपलूण की ओर लगाम मोड़ दी। दो हजार सैनिक दामोल में छोड़ दिये।

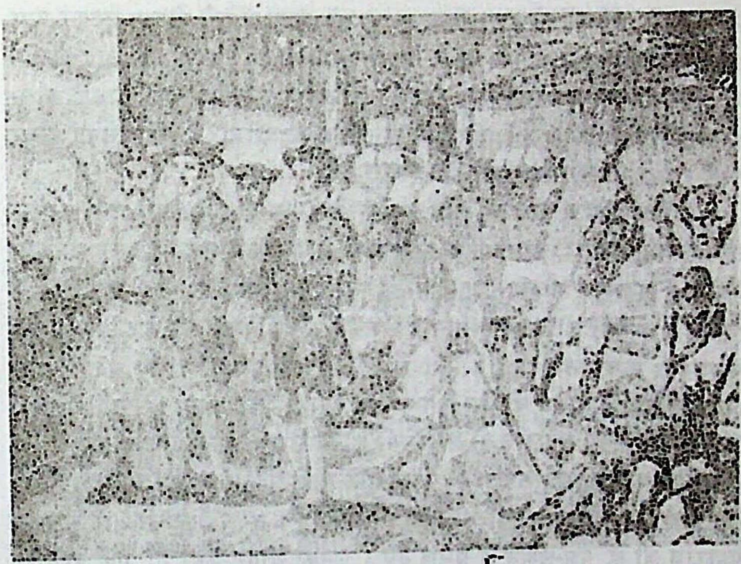
चिपलूण महाराज का स्वागत कर अपने आपको धन्य समझने लगा। हिन्दू राजा के दर्शन हो रहे थे। परन्तु शिवाजी तो स्वयं भगवान परशुराम के दर्शन के अभिलाषी थे। वशिष्ठी नदी के किनारे यह तीर्थ क्षेत्र है। भगवान का मन्दिर एक पहाड़ी पर है। साथ में बहने वाला एक स्वच्छ निर्झर और झाड़ी में छुपा वह स्थान बड़ा ही रमणीक और दर्शनीय है।

महाराज ने बड़े आदर के साथ गाँव के ब्राह्मणों को बुलवाया और उनका सत्कार किया। श्री परशुराम जी की विधिवत् पूजा की। यह दृश्य जनता के लिये नया था। राजा एवं पूजा, यह मेल पिछले साढ़े तीन सौ वर्षों से हुआ नहीं था। अब तक जो आया, वह मन्दिर भ्रष्ट करने, पैसा लूटने और आतंक मचाने के लिये ही आया। अपने पाप-कर्म की छाप वहीं छोड़कर निकल जाने के लिये आया था। परन्तु महाराज तो भगवान की पूजा कर रहे थे। लोगों का सत्कार और पूछताछ कर रहे थे। प्रसाद के रूप में भोजन का प्रबन्ध हुआ।

एक बार पहले भी ऐसा ही हुआ था। जब अयोध्याधीश भगवान रामचन्द्रजी वनवास काट रहे थे, तो वे भी यहाँ आये थे। उन्होंने सीताजी के साथ बैठकर श्री परशुराम की पूजा की थी। आज श्री रामचन्द्रजी के वंशज शिवाजी महाराज अपने परिवार समेत पूजा कर रहे थे। पूजाविधि श्री गोविन्द भट्ट परशुरामकर ने सम्पन्न की।

महाराज जी ने सूर्वराव सूर्वे पर हमला नहीं किया, अपितु अपने वकील को भेजकर अपने शुभ कार्य का परिचय करवाया। सूर्वे ने भी वकील का सत्कार किया। महाराज ने सूर्वे को विश्वास दिलाया और कहा—"हमने यहीं सेना रखी है। आप ही यहाँ के अधिकारी हैं। आपकी देखभाल में यह सेना सुरक्षित रहेगी।" महाराज का साफ मन असर कर गया। दो हृदय एक हो गये। सूर्यराव ने कहा, "महाराज! हम आपके पुत्र हैं। आप जो आज्ञा करें सिर-माथे। अभय मिले, यही प्रार्थना है।" स्वराज्य में सूर्यराव दाखिल हो गया। अपने तो अपने ही होते हैं, क्या हो गया कभी गलती हो गयी तो! अपना दिल साफ हो तो काम कभी न कभी पूरा होता ही है।

इतना सब तो ठीक हो रहा था। परन्तु, महाराज का मन बार-बार बेचैन हो उठता था। कभी-कभी तो अपने आपमें खोये अनायास रौद्ररूप धारण कर लेते थे। मानो किसी पर आग बरसा रहे हों! इसका कारण भी था। अभी भी उन्हें प्रतापगढ़ पर दागे गये तोप के गोलों की आवाज आ रही थी। वह धुआँ अभी भी



जैसे ही अंग्रेज आये, शिवाजी के सैनिकों ने उन्हें पकड़कर गिरफ्तार कर लिया।

आँखों को तकलीफ दे रहा था। वह समय याद आते ही वे तिलमिला उठते थे। वह अंग्रेजी निशान वाला प्रसंग सामने से हटता ही नहीं था।

बस एक दिन उन्होंने राजापुर की ओर अपना इशारा किया। राजापुर में अंग्रेजों का बड़ा गोदाम था। बड़े-बड़े अंग्रेज वहीं रहकर व्यापार करते थे। हेनरी रेविंगटन वहीं रहता था। जो तोप पन्हालगढ़ तक महाराज पर गोला दागने गयी थी, वह तोप भी यहीं थी। वह अंग्रेज निशान भी यहीं था। और महाराज भी अब वहीं थे। अब समय बदला था क्योंकि बदला लेने का समय आया था। भला चूकते क्यों ?

राजापुर के गाँव के पास दो हजार फौज लेकर महाराज पहुँचे। एक सैनिक दस्ता भेजकर गाँव के बड़े-बड़े साहूकारों को बुलवाया। वे सब समय के पहले ही पहुँचे। देरी हुई तो शिवाजी महाराज नाराज होंगे। साहूकारों से अकेले-अकेले में बात क्या हुई, पता नहीं। परन्तु इतिहास ऐसा कहता है कि सबने भारी रकम महाराज के खजाने में जमा कर दी।

हाँ ! जिनको बुलाया नहीं था, ऐसे अंग्रेज अफसर भी थोड़ी देर में वहाँ पहुँचे। अपने आपको समझा रहे थे कि शिवाजी महाराज को यह पता नहीं होगा कि हम भी यहीं रहते हैं। चलो मिलेंगे। नहीं बुलाया तो क्या हुआ ? जैसे ही अंग्रेज आये, उनको महाराज जी के सैनिकों ने पकड़कर गिरफ्तार कर लिया।

महाराज ने सैनिकों को हुक्म दिया—"जाओ सारा अंग्रेजी गोदाम लूटकर साफ़ करो। गैंती चलाकर गोदाम की जमीन एक आदमी की नीचाई तक खोद डालो। हर दीवार को छेदकर देखो कहाँ क्या है। जो अंग्रेज हैं उनको पहले हथकड़ी डाल-कर मेरे सामने पेश करो। जो अकड़े उनकी अकड़ तलवार से निकालकर बाहर फेंको। कहीं भी रहमदिल होने की जरूरत नहीं।"

सैनिक पहुँचे और अपना काम पूरा करके वापस आ गये। उन्हें कई लाख का तो सोना ही मिला। व्यापारिक सामान की जो सूची उपलब्ध है, वह भी बहुत बड़ी है। महाराज सारा सामान घोड़ों, बैलों व कावड़ी पर लदवाकर वहाँ से निकले। कैदियों को और सामान को अलग-अलग किलों पर भेज दिया। यह घटना १५ मार्च सन् १६६१ की है। उम्बर दर्रा से महाराज को तोपें, बन्दूकें, घोड़े आदि मिले थे और अब चौबीस दिन के बाद दुबारा यह खजाना। लड़ाई के समय या शान्ति के समय महाराज तो आदमियों को मिलाने की फिक्र में ज्यादा रहते थे। हीरे-मोती-कपड़ा मिल सकता है परन्तु हीरे-मोती पहनने वाले सुयोग्य पुरुष तो हों। यहाँ पर महाराज को बालाजी चित्रे नाम के एक तरुण मिले जो आगे चलकर महाराज जी के पत्र-लेखन के प्रमुख बने। उनकी जीवन-कथा भी एक अपने ही ढंग की बड़ी हृदयद्रावक है। बालाजी आवजी चित्रे के पिता आवजी चित्रे को जंजीरा के सिद्दी ने भूसे के बोरे में बन्द करके समुद्र में फिंकवा दिया था। पूरा घर लूट लिया। बालाजी की माता को पकड़कर तीन पुत्रों समेत विदेश में जाकर बेचने के लिये हुक्म दे दिया। हुक्म दिया, परन्तु उसका.काम पूरा न हो सका क्योंकि भेजने वालों को बेचकर क्या मिलने वाला था। माता और पुत्रों का भाग्य देखो, भेजने वाले ने माता-पुत्रों को यहीं बेच दिया। खरीदने वाले थे बच्चों के मामा विशाजी तुंगारे। बच्चों के नाम थे बालाजी, श्यामजी, चिमणाजी। जब शिवाजी राजापुर पहुँचे तो ये बच्चे किशोर और बाल अवस्था के थे। जैसे ही शिवाजी महाराज के दर्शन हुए, तो सेवा के लिये समर्पण भाव से तैयार हो गये। महाराज इसी खोज में घूमते थे और जगह-जगह पर ऐसे हीरे-मोती मिलते थे।

महाराज ने आदिलशाही की सत्ता को उखाड़ फेंककर तहस-नहस करना शुरू कर दिया। बीजापुर में रोजाना खबर पहुँचती कि आज यह चला गया, कल वह चला गया। अब क्या होगा खुदा जाने।

एक के बाद एक बरबादी के पत्थर की मार रोजाना सहन करता बीजापुर दरबार कराह रहा था।

२४
अंग्रेजों की धुनाई

१५ माच, १६६० को राजापुर गोदाम लूटते समय पकड़े हुए अंग्रेज कैदी अब शिवाजी की जेजों में सड़ रहे थे।

कुछ वासौटा के किले पर और कुछ सोनगढ़ किले पर कैद थे। इस भारी लूट में कई लाख रुपये का सोना मिला था और अंग्रेज व्यापारी होने के कारण बहुत अधिक मात्रा में अन्य सामान भी मिल गया था।

सामान में सोना, चाँदी, पीतल, शीशा, ताँबा, लोहा, हीरे-मोती भी थे।

हाथीदाँत का नक्काशीदार सामान, कस्तूरी, केशर, इलायची, लवंग, मुनक्का. अखरोट आदि भी उपलब्ध किये गये थे।

महाराज को यह सब एक ही दिन में प्राप्त हुआ था। २४ दिन पहले उम्बर दर्रा में बड़ी-बड़ी तोपें और बन्दूकें प्राप्त हुई थीं। अब यहाँ अंग्रेज कैदी बने और लाखों का सामान मिला। स्वराज्य के लिये सब वस्तुओं की आवश्यकता तो थी ही।

असल में देखा जाय तो महाराष्ट्र ही क्या सारा हिन्दुस्थान ही विदेशियों द्वारा लूटा जा रहा था। लूट का सामान पराये देश भेजा जाता था। लूट तो लूट ही होती है। सामान के साथ अनेकों की जान जाती थी और इज्जत भी लूटी जाती थी।

हजार वर्ष से एक-तरफा ही सब चल रहा था। किसी ने रोका नहीं था। सब ही दबी आवाज में नीची गर्दन कर सह रहे थे।

परन्तु ईश्वर कृपा से अब पासा पलटने लगा था। अब शिवाजी महाराज ने ईंट का जवाब पत्थर से देने की सोची ही नहीं, वरन् दे रहे थे। अंग्रेजों ने तो १०० साल में यह देखा ही नहीं था। सोचा ही नहीं था कि कोई माई का लाल यहाँ पैदा होगा और उनकी करतूतों का जवाब माँगेगा। जवाब भी तलवार की छाया में पूछेगा।

परन्तु अब ऐसा ही हो रहा था। हेनरी रेविंगटन राजापुर के गोदाम का काम

देखता था। परन्तु उसका अफसर सूरत में था। हेनरी रेविंगटन ने अपने ही निर्णय से पन्हालगढ़ पर तोप भेजी थी और स्वयं ने ही जाकर गोला दागा था। सूरत के प्रेसीडेण्ट को इसका बाद में पता चला, जब शिवाजी महाराज पन्हालगढ़ से निकल गये। अब क्या किया जाये, यह वह अभी सोच भी नहीं पाया था कि शिवाजी ने राजापुर का गोदाम लूटकर उसके सामने एक नया संकट खड़ा कर दिया।

हेनरी रेविंगटन को जब पकड़कर शिवाजी के सामने लाया गया तो उसने क्षमा माँगकर अपना छुटकारा कराना चाहा। किन्तु शिवाजी कच्ची गोलियाँ नहीं खेले थे। अंग्रेजों को कुछ शिक्षा देना चाहते थे। अतः उसे जेल में बन्द करवा दिया।

जेल से हेनरी रेविंगटन अपने प्रेसीडेण्ट को बार-बार पत्र लिखकर कह रहा था—'हमारा छुटकारा करवाइये'। १० जून, १६६१ को बेचारे ने लिखा था, 'मेरी जान जा रही है, कुछ करो'। बेचारे की आशा धीरे-धीरे पस्त हो रही थी और उसके दो साथी रिचर्ड नेपीयर और सेम्युल बर्नार्ड तो राजापुर की जेल में मर ही गये थे। वही डर उसको भी था। हेनरी रेविंगटन की चिट्ठियों के कारण प्रेसीडेण्ट ने शिवाजी महाराज को बहुत बार पत्र लिखे। महाराज ने पत्रों का उत्तर देने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

परन्तु महाराज ने आगे चलकर अपने वकील श्री सोमनाथ के द्वारा अपना विचार प्रकट किया।

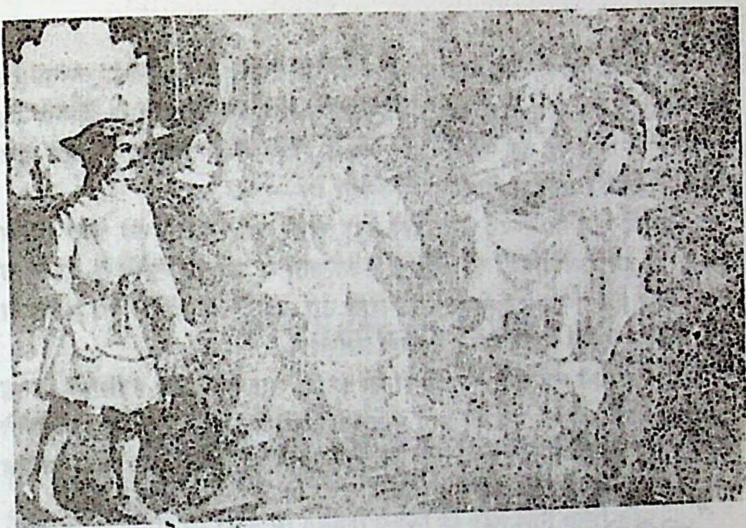
महाराज का कहना था—

"पन्हालगढ़ में जो हमारा नुकसान हुआ है, वह पूरा कर दो और पन्हालगढ़ का घेरा पड़ने के पहले दारोजी के द्वारा जो बात तय हुई थी वह पक्की करो। वह बात थी कि 'अंग्रेजों ने जंजीरे के सिद्दी के विरुद्ध लड़ाई में महाराज की मदद करनी है। तोपें और बारूद की मदद जरूरी थी'।"

अंग्रेज प्रेसीडेण्ट ऐण्ड्रयुज महाराज को पत्र तो लिखता था, परन्तु लड़ाई में मदद या नुकसान का हर्जाना देने के विषय में चुप रहता था।

शिवाजी मक्कार अंग्रेजों की चाल को समझ गये। जैसे को तैसा व्यवहार महाराज द्वारा भी हो रहा था। पत्र-व्यवहार, वकीलों का आना-जाना, वह भी दूर के फासले का, यह एक लम्बा सिलसिला था। परन्तु कैदियों की तो रोज जान जा रही थी। "हमारा छुटकारा होना ही नहीं है, सूरत सरकार या ब्रिटिश सरकार कुछ नहीं कर सकती", ऐसे विचार कैदियों के मनों में आने लगे थे।

हेनरी रेविंगटन बीमार रहता था। वह पूरी तरह से समझ गया कि अब जेल में ही मरना है। प्रयत्न तो आदमी सब प्रकार के फिर भी करता ही है। महाराज से उसने पैरोल पर छुट्टी माँगी और सूरत सरकार से महाराज शिवाजी की बात मनवाकर पुनः वापस आने और जेल काटने का वचन भी उसने दिया। हेनरी



हेनरी रेविंगटन को हथकड़ियाँ डालकर महाराज के सामने पेश किया गया।

रेविंगटन सूरत गया। कोशिश करता रहा, परन्तु कुछ भी परिणाम नहीं निकल सका। निराश हो वह बीमार हो गया। जेल से अच्छा तो बाहर मरना ठीक समझकर मर गया।

इधर बचे हुए अंग्रेज कैदी अपने अफसर को लिख-लिखकर थक गये। प्रेसीडेण्ट शिवाजी को पत्र लिखते-लिखते थक गया और आखिर में उसने अपने ही कैदियों को एक खासा पत्र लिखा जो आज भी उपलब्ध है। पत्र १० मार्च, १६६२ को सूरत से लिखा गया है। उसमें लिखा है, "सबके पत्र मिलते रहते हैं। आपको और शिवाजी को पत्र लिखने का हमारे पास समय नहीं। महाराज तो एक पत्र का उत्तर भी देते नहीं। वैसे देखा जाय तो यह विचार करना चाहिए कि आप सबको जेल क्यों भुगतनी पड़ रही है? आप कम्पनी के माल की रक्षा कर रहे थे, इस कारण जेल मिली हो तो जिम्मेदारी हमारी हो सकती है। परन्तु पन्हालगढ़ किले पर आपने जो तोप भेजी, अपना झण्डा फहराकर गोले दागे, उसका यह परिणाम है कि आपको सजा मिल रही है। शिवाजी की जगह और कोई आदमी होता, तो वह भी बदला लेने के लिये यही करता। क्या व्यापारी को बारूद का सामान बेचना चाहिए अथवा स्वयं जाकर तोप जमाकर गोले दागना चाहिए? यह होना नहीं चाहिए था। हो गया है, तो गलत हुआ है। पराये इलाके में यह गुस्ताखी हुई है। अब फल भुगतना ही पड़ेगा। और कुछ हो ही नहीं सकता। शिवाजी के साथ हमारी बात जो पीछे हुई थी, वह हेनरी रेविंगटन को मालूम थी। फिर भी यह

हुआ है।"

अंग्रेज चालाक है, यह बात सच है। मौका जैसा होता है, वैसा चलता है। पूरा व्यापारी है। राज भी व्यापारी, और सफल व्यापारी की तरह ही चलाता है। उदाहरण के लिए यह एक पत्र है। इंग्लैण्ड के राजा ने हिन्दुस्थान में रहने वाले अंग्रेज अधिकारी अब्राहम शिपमैन को लिखा था—

"हमारे राज में बम्बई जैसा द्वीप बड़ा खर्चा कर मिलाने का खास कारण यह है कि हमारे आदमियों को अधिक स्वतन्त्रता से और आसानी से रहने का मौका मिले। व्यापार तेज होगा और खास उस इलाके में हम अपना साम्राज्य बढ़ा सकेंगे। अपना वैभव बढ़ाने का यही रास्ता है।"

यह पत्र साफ कहता है कि अंग्रेजों का इरादा क्या था। इस इच्छा के विरुद्ध महाराज १६६२ में ३२ वर्ष की आयु में तलवार खींचकर खड़े हो गये थे। पश्चिमी तट पर चढ़े आ रहे अंग्रेजों को रोकने की और हटाने की ताकत शिवाजी महाराज ने जुटाई थी, यह बात भी सच है।

अंग्रेजों को व्यापार के सिवाय और कुछ नहीं करने देना चाहिए, यह शिवाजी की नीति थी। वे राजनीति में टाँग न अड़ायें, इसलिए राजापुर का गोदाम लूटने और उन्हें कैदी बनाने का मार्ग अपनाया था। सजा देना और सम्बन्ध भी रखना, यह महाराज की विशेषता थी। आखिर १५ फरवरी, १६६३ को यह बतलाकर कि आगे ऐसी गलती मत करना, अब यहाँ शिवाजी का राज है, कैदी मुक्त कर दिये गये।

२५

लालमहल पर छापा

शाम का समय था। शिवाजी महाराज अर्थात् स्वातन्त्र्य के लिये जूझते ३२ वर्ष के वीर युवक! राजगढ़ के किले पर खड़े विचारों के गहरे सागर में खोये थे। किसी सच्चे मोती की खोज थी। गहरी डुबकी ही काम आने वाली थी।

विचार-चक्र भी कैसा विचित्र होता है। वर्तमान की समस्याओं से ग्रस्त मन कभी भविष्य की खिड़की में झाँककर आने वाले सुखद कल के दर्शन करना चाहता है, तो कभी भूत के कड़वे-मीठे अनुभवों के आधार पर वर्तमान की कठिन सीढ़ियों को लाँघने की सोचता है।

शिवाजी महाराज भी अकेले विचारों में डूबे थे।

अनायास उनकी आँखों के सामने १३ जुलाई, १६६० से लेकर जनवरी १६६२ तक का एक चलचित्र आया और ठहर गया। पन्हालगढ़ के किले पर जब वे घेरे गये थे, तो सिद्दी जौहर का साथ देने वाले न केवल विदेशी अंग्रेज का काँटा, अपितु अपने ही जसवन्तराव दलवी, सूर्वे आदि का भी मानमर्दन महाराज के हाथों ही हुआ था।

स्वयं मुगल सरदार औरंगजेब के मामा शाइस्ताखाँ के दो प्रमुख सरदार करतलबखाँ और नामदारखाँ का पूर्ण पराभव किया था।

बीजापुर दरबार ने तो उनसे युद्ध करने का विचार ही छोड़ दिया था। १६५९ में अफजलखाँ के वध के बाद सिद्दी जौहर का घेरा क्या टूटा, महाराज की धाक ऐसी जमी कि आदिलशाही हिम्मत की कमर ही टूटकर चकनाचूर हो गयी।

और आज है कि स्वयं शाइस्ताखाँ महाराज के पूना स्थित लालमहल में घुस बैठा है। मानो कोई विशालकाय अजगर शेर की माँद पर आ जमा हो। इसकी पसलियाँ चूर-चूर किये बिना महाराज को चैन कहाँ।

तभी किले के निचले भाग में हो रही मंगल आरती की ध्वनि उनके कानों में पड़ी, तो विचार-श्रृंखला टूटी। दर्शन करने नीचे गये और प्रसाद ग्रहण कर ही रहे थे कि एक चतुर गुप्तचर ने आकर उनका अभिवादन किया। उससे पता चला

कि शाइस्ताखाँ गाँव-गाँव में घुसकर लोगों से जबरन अनाज वसूल कर रहा है। उसके अत्याचारों से त्रस्त लोग बेहाल हो इधर-उधर भागने लगे हैं। लोग पूछते हैं—शिवाजी महाराज क्या कर रहे हैं? क्या हमारी सहायता तब करेंगे, जब हमारे प्राणपखेरू उड़ जायेंगे? आदि-आदि।

उन्होंने गुप्तचर को विदा दी और साहस को निमंत्रित किया।

साहस! हाँ वही, जो हिम्मत के नाम से भी पहचाना जाता है और वीरों का आभूषण होता है।

देर रात गये तक मंत्रणा चलती रही। मोरोपन्त पिंगले, सरजाराव जेधे, चाँद जी जेधे, चिमणा जी, बापू जी आदि सभी उपस्थित थे।

आगे क्या, कैसे और कब के प्रश्न मुँहबाये खड़े थे।

आखिर महाराज का स्वर गूँजा—"बस यही विचार पक्का।"

सब ताकने लगे। शिवाजी के चेहरे की आभा देखते ही बनती थी। लगता था साक्षात् जगदम्बा ही बोल रही हो।

शिवाजी ने आगे बात कही—"शाइस्ताखाँ के सरदारों को इक्के-दुक्के हराने से अब काम नहीं चलेगा। वह और सेना दिल्ली से बुला लेगा। यही क्रम चलता रहेगा। अही-मही जैसा है इन मुगलों का। खून से पैदा होते रहेंगे। रावण का एक सिर काटो, तो दूसरा तैयार। कान-खजूरे के एक-एक कर पैर कब तक काटोगे?"

शिवाजी की ओर सब टकटकी बाँधकर देख रहे थे।

"अब तो ऐसा कुछ करना है कि स्वयं शाइस्ताखाँ देहली की ओर सिर पर पैर रखकर भागे। भागेगा ही। उसे भागना ही पड़ेगा," शिवाजी की वाणी गम्भीर हो उठी, "खान पर हमला बोलूँगा। खान मरेगा। उसकी सेना डरकर भागेगी और दिल्ली जाकर ही साँस लेगी। किसी कारण यदि खान नहीं भी मरा तो भागने वालों में पहला नम्बर उसी का होगा। बला टलेगी और सदा के लिये टलेगी।"

योजना स्वीकार हुई तो छोटी-छोटी बातों की तैयारी प्रारम्भ होने लगी। एक-एक बात का विचार। एक-एक विचार को कार्यरूप में परिणत करने की योजना, बारीक बात का अध्ययन।

सब तैयारियाँ पूरी हो भी गयीं और किसी को कानोंकान पता भी न चला।

बड़ा जोखिम का काम था। पूना में घुसना ही आसान नहीं था। फिर लाल महल में पहुँचकर खान के कमरे में घुसना तो लगभग असम्भव। परन्तु एक बार खान के कमरे में घुसने के बाद तलवार उसके पेट में घुसाना उतना कठिन नहीं था।

एक लाख मुगल सेना लालमहल के आसपास मीलों के घेरे में पड़ी थी। महल में भी पचासों कमरे। न जाने खान किस कमरे में हो।

चैत्र मास का पहला दिन। महाराज ने इस शुभ मुहूर्त में अपने साथियों को सम्पूर्ण योजना समझा दी।

८ दिन पश्चात् अर्थात् रामजन्म के १२ घण्टे पहले हमला बोला जायेगा।

कौन कहाँ रहेगा, कब सामने आयेगा, किस दिशा से आगे बढ़ेगा, कार्य समाप्त होने के बाद कहाँ से कब निकलकर भागेगा, नकली और असली रास्ता कौन-सा होगा आदि-आदि सब बातें नक्शे पर समझा दी गयीं।

मोरोपन्त और नेताजी बाहर रहकर तैयार खड़ी फौज का नेतृत्व कर रहे थे। महल के दोनों ओर, मानो जय-विजय अथवा ऋद्धि और सिद्धि खड़ी हों।

महाराज तलवार और ढाल लेकर ४०० सैनिकों के साथ राजगढ़ किले से बाहर निकले।

माता जीजाबाई चिन्तित थीं। आखिर तो माँ का दिल था। अन्यथा क्या वे नहीं जानती थीं कि शाइस्ताखाँ जब कालिया नाग बनकर स्वराज्य की यमुना में फुंकार रहा हो, तो शिवाजी के अतिरिक्त कौन है जो भगवान कृष्ण बनकर उसका काम समाप्त करेगा ?

पूना से आधा मील पहले ही महाराज एक खेत में रुक गये। अष्टमी का चाँद ऊपर आ गया था।

यह रमजान का महीना था। मुगल सेना के मुसलमान सैनिक रोजे से रहते थे। दिन भर के भूखे रात को खाने पर टूटते, तो बुरी तरह से। भरपेट भारी भोजन और उसे हजम करने को शराब और उसके बाद गहरी नींद।

और यही सबसे अच्छा अवसर समझकर महाराज ने पूना में प्रवेश करने की योजना बनायी थी। महाराज पूना की ओर बढ़ रहे थे और मुगल सेना बिस्तर की तरफ। शिवाजी को धुन सवार थी। उन्हें नजर आता था तो केवल शाइस्ताखाँ का कमरा और मुगल सैनिकों को दिख रही थीं स्वप्न में हूरें। शराब अपने पूरे असर पर जो थी !

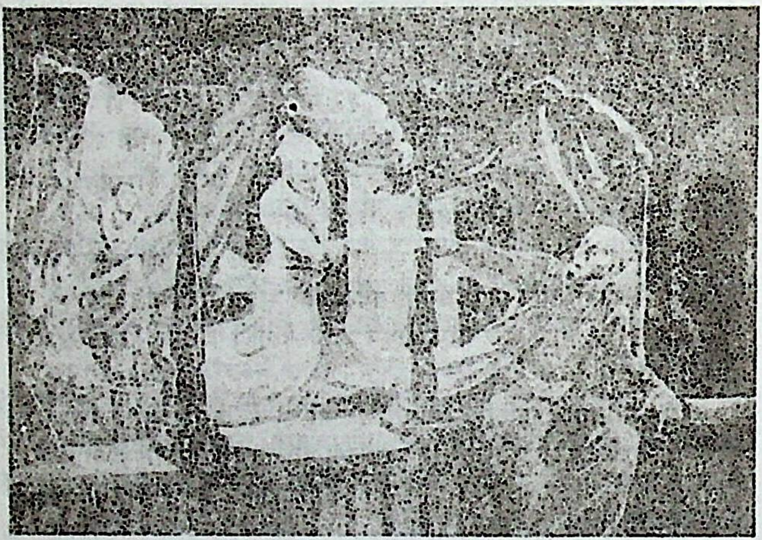
सर्जेराव जेधे घोड़ा तैयार कर महाराज की वापसी की प्रतीक्षा में खड़े थे। अभी आध-एक घण्टे में ही तो वापिस आ जायेंगे !

महाराज २०० सैनिकों को लेकर मुगल शिविर में ऐसे घुसे जैसे अपनी ही छावनी में प्रवेश कर रहे हों। चिमाजी तथा बाबाजी देशपाण्डे दोनों बन्धु आगे चल रहे थे। पीछे मामूली सैनिक के वेश में शिवाजी महाराज थे।

चौकीदार ने टोका तो विश्वास भरा उत्तर—"पहरा पूरा कर वापिस आ रहे हैं। बड़ी भूख लगी है भई। आपने तो रोजा रखा होगा, हमारा वैसे ही रोजा हो गया है अच्छा, अच्छा। खुदा हाफिज।"

और यही जवाब कई जगह लाजवाब साबित हुआ।

कहीं-कहीं केवल यही कहकर काम चल गया—"पहरे से लौटे हैं। आप लोग



शाइस्ताखाँ पीछे के दरवाजे से नीचे कूदा। तभी शिवाजी की लपलपाती तलवार उसके दाहिने हाथ पर पड़ी।

तो रोजे से निपटे होंगे ?"

मुगल सेना में मराठा और राजपूत सेना भी तो थी न। शिदखड़े के जाधवराव घाटगे और गाड़े, कोकाटे और गायकवाड़ आदि।

कुछ दूर तक अन्दर पहुँचने के बाद तो किसी ने टोका भी नहीं। इतने अन्दर हैं तो अपने ही सैनिक होंगे। पूछताछ तो बाहरी चौकियों पर होती है।

शाइस्ताखाँ सो गया था। अब चाँद भी छुप गया। अँधेरा चाँद को ग्रस गया। अँधेरे में तलवार चलने वाली थी और अँधेरे में ही महाराज को लालमहल से बाहर भी निकलना था।

खान जिस कमरे में सोया करता था उसमें एक खिड़की थी। शिवाजी ने उसी से घुसने की योजना की थी। परन्तु वह खिड़की ईंटों से पाट दी गई थी। ईंटें तोड़ना शुरू किया तो कुछ पहरेदार जागे। उनका काम वहीं तमाम कर दिया गया। मावलों ने कितनों की ही गर्दन धड़ से अलग कर दी। प्रवेश लायक जगह बन गयी तो एक मावला अन्दर घुसा। खान कहीं अन्य कमरे में सो रहा था परन्तु यहाँ उसका एक सैनिक पहरा दे रहा था। मावला सरदार चिमणा जी देशपाण्डे तलवार खींचकर इसी के पीछे भागे। शाइस्ताखाँ का सैनिक आगे-आगे और चिमणा जी पीछे-पीछे। भगदड़ शुरू हो गयी।

शिवाजी खान की खोज में थे ही। वे भी खान के पीछे भागे।

इधर अन्य सैनिक किले के मुख्य द्वार पर आ धमके और मार-काट मचाकर दरवाजा अन्दर से वन्द कर लिया।

शोर शराबे में खान की आँख खुली ही थी, पूरी तरह सम्भल भी नहीं पाया था, कि शिवाजी दिखाई दिये।

उसी समय अचानक अँधेरा घुप हो गया। वास्तव में औरतों ने दिये बुझा दिये। सारे महल में कोलाहल मच गया। मराठों की तलवारें चल रही थीं। परन्तु कुछ नजर नहीं आता था।

तभी शाइस्ताखाँ का जवान लड़का अब्दुल फतेहखाँ जाग गया। उसने दो-तीन को मारा और अपने वाप का नाम लेकर चिल्लाने लगा। मुँह से आवाज निकलने की देर थी कि तलवार का वार पड़ा और वह जख्मी होकर जमीन पर गिर पड़ा।

शाइस्ताखाँ को औरतों ने परदे की ओट में छिपा लिया। शिवाजी तलवार की नोक से पर्दा फाड़कर भीतर घुस गये। खान पीछे के दरवाजे से नीचे कूदा। तभी शिवाजी की लपलपाती तलवार उसके दाहिने हाथ पर पड़ी और तीन अँगुलियाँ कटकर एक ओर जा गिरीं। अँधेरा तो था ही। महाराज ने समझा काम पूरा हो गया। अव निकलना चाहिए।

निकलने के संकेत हो गये।

शोर मच ही रहा था। मराठा सैनिकों ने इस शोर को और भी वढ़ा दिया। चिल्लाने लगे—"शिवाजी आया! मराठे आये! बचाओ! भागो! दौड़ो!" मुगलों ने समझा ये तो अपने ही सैनिक हैं।

इसके वाद मुख्य द्वार खोल दिया गया। बाहर के सैनिक अन्दर और अन्दर के बाहर की ओर दौड़े। इसी ठेल-पेल में महाराज बाहर हो गये।

काफी देर के बाद कुछ शान्ति स्थापित हुई। रोशनी जलायी गयी। शिवाजी गायब। 'हव्वा बनकर आया था। कम्बख्त खान साहब के सीधे हाथ की तीन उँगलियाँ काटकर भाग गया।'

'शिवाजी भाग गया। लालमहल भूतखाना है, नहीं तो कहीं ऐसा हो सकता है!'

यही चर्चा मुगल सैनिक दिन निकलने तक करते रहे।

२६

झाँसा

लालमहल में शाइस्ताखाँ की तीन अँगुलियों को काटकर खून के कतरों से वहाँ के फर्श को लाल कर शिवाजी ने महल के नाम को सार्थकता प्रदान कर दी।

दर्द से कराहते शाइस्ताखाँ के मन में गहरा सदमा घर कर गया। एक लाख सेना के घेरे में घुसकर, घण्टेभर में ही उसकी उँगलियाँ तराशकर शिवाजी साफ निकल गया और उसकी सेना कुछ भी न कर सकी।

वह गुस्से से तिलमिला रहा था—"नमकहरामो! खड़े-खड़े मुंह देख रहे हो। जाओ! पीछा करो और उसे जिन्दा पकड़कर लाओ। वरना समझ लो तुम्हारी खैर नहीं। जाओ!"

सुबह के कोई २ बजे होंगे। सैकड़ों घुड़सवार हुक्म की तामील करने निकल पड़े।

उधर शिवाजी किले से निकलकर नियत स्थान पर पहुँचे तो घोड़ा तैयार था। उछलकर घोड़े पर सवार हुए और अपने साथियों सहित हवा की तरह निकल भागे। उन्होंने एक नयी युद्धनीति के द्वारा सिद्ध कर दिया था "क्या न कर सकता अकेला।" साहस और योजना के बल पर उन्होंने शाइस्ताखाँ को उसकी माँद में ललकारा ही नहीं, पछाड़ा भी था। शाइस्ताखाँ की हिम्मत को धक्का लगा था परन्तु अभी उसे पूरी तरह तोड़ना शेष था।

पीछा करने वाली सेना को झाँसा देकर यह कार्य इसी रात पूरा कर लेने की उनकी योजना थी।

शिवाजी ने लालमहल में घुसने से पहले ही इसकी भी योजना कर ली थी। वे जानते थे पीछा किया जायेगा। मुगल सेना की छावनी से आधा मील दूर ही चार सौ बैल इकट्ठे कर लिये गये थे। उनके सींगों पर मशालें बँधी थीं। शिवाजी के महल से बाहर निकलने की देर थी कि बैलों के सींगों की मशालें सुलगा दी गयीं और बैलों को पथरीले रास्ते पर हाँक दिया गया।

मशालों को हवा लगी तो और तेज जलीं। तेज जलीं तो बैल और बिदके



मुगल सैनिक बेतहाशा बैलों के पीछे भागे जा रहे थे और
शिवाजी दूसरी दिशा में सिंहगढ़ की ओर

और तेज दौड़े। बेतहाशा दौड़े।

मूर्ख मुगल सैनिक समझे मराठा सैनिक ही बेतहाशा भागे जा रहे हैं। लगे पीछा करने। हजारों घुड़सवार जी जान से 'मराठा सेना' का पीछा करने लगे। जोर-जोर से नारे लगाते, पीछे आने वालों को और तेज दौड़ने और शिवाजी को जिन्दा पकड़ने की कसमें खाते ये सैनिक भी बैलों के पीछे-पीछे पथरीले मार्ग पर बढ़े जा रहे थे।

बड़े खुश थे मुगल। शिवाजी को आज खुले मैदानों में भुगतेंगे। सारी अकड़ निकाल बाहर करेंगे।

और शिवाजी थे कि अपने साथियों को लिये दूसरे रास्ते से बढ़ते जा रहे थे। कोई डर नहीं। आखिर एक ऊँचे से टीले पर जाकर रुक गये।

उन्होंने सन्तोष की साँस ली। योजना सफल हुई। सुबह सूरज की किरणों के साथ सारी दुनिया जान जायेगी शाइस्ताखाँ की क्या मिट्टी पलीत हुई है। मुगल सेना को पूना से दिल्ली की तरफ कूच करने में अब ज्यादा देर न लगेगी और औरंगजेब के दक्षिण विजय के स्वप्नों को चूर-चूर होने में भी।

शिवाजी ने आनन्दित होकर मोरोपन्त से कहा—"पन्त, बड़े थक गये! चलें घर चलकर विश्राम करेंगे। आज रामजन्म है न! आपका तो उपवास होगा।

माताजी का भी उपवास है। माताजी मन्दिर में होंगी। चलें, वहीं उनके दर्शन कर, प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

मोरोपन्त ने उत्तर दिया—"आज ऐसा लग रहा है महाराज! दुष्ट-दलन एवं सज्जनरक्षण हित राम ने ही आपके रूप में पुनर्जन्म लिया है। आप सचमुच समस्त हिन्दू समाज के लिये राम बनकर अवतरित हुए हैं।"

"मैं क्या हूँ, पन्त! यह तो ईश्वर की इच्छा है जो वह मेरे द्वारा पूर्ण करा रहा है।" शिवाजी ने तत्काल मोरोपन्त को टोका।

तभी अचानक थोड़ी दूरी पर खड़े चालीस-पचास मराठ सैनिकों की टोली के ठहाका मारकर हँसने की आवाज सुनकर उनके कान खड़े हो गये।

महाराज और मोरोपन्त दस कदम चलकर स्वयं वहाँ पहुँचे और सैनिकों से इस प्रकार हँसने का कारण पूछा। ऐसे हँसना बड़ा खतरनाक भी तो हो सकता था।

परन्तु उनकी हँसी रुकी नहीं। हाँ, सबने पूरब की तरफ इशारा जरूर किया।

इधर बाल रवि की किरणों को भी हँसी आ रही थी मूर्ख मुगल सैनिकों पर!

कासरन की घाटी में मुगल सैनिक बैलों के पीछे भागते जा रहे थे और बैल भागते जा रहे थे घाटी से नीचे की ओर। घुड़सवारों को कितनी दिक्कत का सामना करना पड़ रहा होगा, यह अन्दाजा लगाकर मराठा सैनिक खिलखिलाकर हँस पड़े थे।

महाराज भी हँस पड़े।

कूच करने का संकेत मिला, तो सैनिक घोड़ों पर सवार हो सिंहगढ़ की ओर चल पड़े।

दूर घाटी के नीचे पहुँचकर बैल हरी-हरी घास चरने लगे। मशालें अब तक जलकर बुझ चुकी थीं। परन्तु मुगल सेना के दिल में खीझ की आग दहक रही थी—इन कमबख्त बैलों से भी मात खाना हमारे नसीब में लिखा था!!

□□□